Year 11, Issue 43
July-Sept., 2014

VASUDHA A CANADIAN PUBLICATION
EDITOR - PUBLISHER : SNEH THAKORE

कैनेडा से प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका

वसुधा

संपादन व प्रकाशन
स्नेह ठाकुर

वर्ष ११ - अंक ४३, जुलाई-सिताम्बर २०१४

भारतवंशी

पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि

भारतवंशी
सात समुंदर पार हो
मेरे प्यार हो
अब तुम्हारे यहाँ चिट्ठी नहीं, ई-मेल आती है
एसएमएस आता है
तुम्हारे दिल को छू जाता है
पर मन नहीं भरता
फ़ोन पकड़ते हो
पिता का प्यार पा लेते हो
माँ का दुलार मिल जाता है
कोई यार मिल जाता है
संबंधियों का सत्कार मिल जाता है
एक बात पूछूँ
क्या यह सब विकल्प है
वतन से आई चिट्ठी का
जिसे तुम बार-बार पढ़ते थे
हँसते थे, रोते थे,
दु:ख-दर्द बाँट लेते थे
अब सब मैकेनिक हो गया है
आँसुओं से भीगा ख़त
कहीं खो गया है
भारतवंशी भारतवंशी नहीं रहा
विश्ववंशी हो गया है.

वसुधा

संपादन व प्रकाशन : स्नेह ठाकुर

शीर्षक	रचयिता	पृष्ठ
संपादकीय		२
वीणावादिनी	मनोरमा तिवारी	१२
हथियार	चित्रा मुद्गल	१३
अबकी अगर		
लौटा तो	पद्मभूषण कुँवर नारायण	२०
अपने दस्तख़त		
अपनी भाषा में करें	डॉ. वेद प्रताप वैदिक	२१
हैरान थी हिन्दी	डॉ. दिविक रमेश	२२
एक देर शाम	डॉ. अजय नावरिया	२५
दर्द	सरोज श्रीवास्तव 'स्वाति'	३३
भूतनाथ	सुशांत सुप्रिय	३४
जीवन		
फूलों की सेज नहीं	ललित कुमार	३८
फुटपाथ और पगडंडी	सुरेन्द्र नाथ तिवारी	३९
भारतवंशी	पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि	१अ
फूल नहीं,		
चिंगारी थीं	साधना उपाध्याय	४४अ

रचनाओं में निहित विचार तथा मन्तव्य रचनाकारों के निजी विचार तथा मन्तव्य हैं। 'वसुधा' रचनाकारों के विचारों के लिए उत्तरदायी नहीं है। प्रकाशक की आज्ञा बिना कोई रचना किसी प्रकार उद्धृत नहीं की जानी चाहिए। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा।

रचनाएँ भेजने के लिए सम्पर्क पता :
16 Revlis Crescent, Toronto, Ontario M1V-1E9, Canada. TEL. 416-291-9534

वार्षिक शुल्क Annual subscription.....$25.00
डाक द्वारा By Mail, Canada & USA.....$35.00, Other Countries.....$40.00
Website: http://www.Vasudha1.webs.com
e-mail: sneh.thakore@rogers.com

संपादकीय

सभी की शुभकामनाओं और निर्णायकों के निर्णय के परिणामस्वरूप मुझे 'इंटरनेशनल वीमेन्स एक्सलेन्स अवार्ड २०१४' से सम्मानित किया गया है. इस सम्मान को प्रदान करने वाली भारत तथा दूसरे देश की यू.एन.ओ. से जुड़ी संस्थाओं की आभारी हूँ.

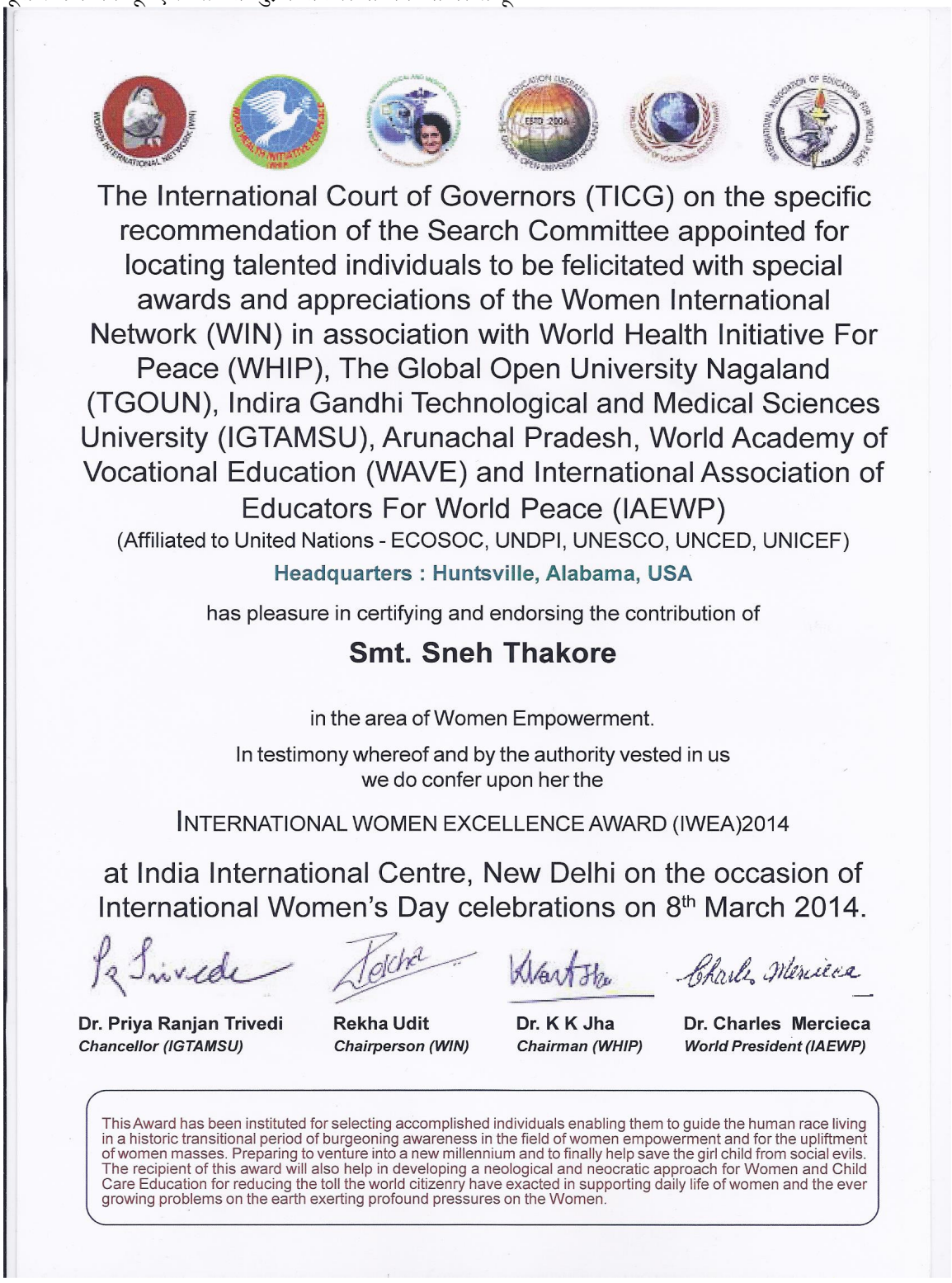

The International Court of Governors (TICG) on the specific recommendation of the Search Committee appointed for locating talented individuals to be felicitated with special awards and appreciations of the Women International Network (WIN) in association with World Health Initiative For Peace (WHIP), The Global Open University Nagaland (TGOUN), Indira Gandhi Technological and Medical Sciences University (IGTAMSU), Arunachal Pradesh, World Academy of Vocational Education (WAVE) and International Association of Educators For World Peace (IAEWP)

(Affiliated to United Nations - ECOSOC, UNDPI, UNESCO, UNCED, UNICEF)

Headquarters : Huntsville, Alabama, USA

has pleasure in certifying and endorsing the contribution of

Smt. Sneh Thakore

in the area of Women Empowerment.

In testimony whereof and by the authority vested in us
we do confer upon her the

INTERNATIONAL WOMEN EXCELLENCE AWARD (IWEA)2014

at India International Centre, New Delhi on the occasion of International Women's Day celebrations on 8th March 2014.

Dr. Priya Ranjan Trivedi	Rekha Udit	Dr. K K Jha	Dr. Charles Mercieca
Chancellor (IGTAMSU)	*Chairperson (WIN)*	*Chairman (WHIP)*	*World President (IAEWP)*

This Award has been instituted for selecting accomplished individuals enabling them to guide the human race living in a historic transitional period of burgeoning awareness in the field of women empowerment and for the upliftment of women masses. Preparing to venture into a new millennium and to finally help save the girl child from social evils. The recipient of this award will also help in developing a neological and neocratic approach for Women and Child Care Education for reducing the toll the world citizenry have exacted in supporting daily life of women and the ever growing problems on the earth exerting profound pressures on the Women.

भारतीय संस्कृति, भारतीय परंपरा का उत्कृष्ट नमूना पेश किया भारत के नये प्रधानमंत्री माननीय श्री नरेन्द्र मोदी जी ने. बहुमत से चयनित नये प्रधानमंत्री माननीय श्री नरेन्द्र मोदी जी ने सर्व प्रथम अपनी माँ के चरण स्पर्श किये और माँ ने भी उनके उन्नत ललाट पर तिलक लगा उनका मुख लड्डू की मिठास से रस-प्लावित कर उनके सिर पर अपना वरद् हस्त आशीर्वाद-स्वरूप रखा. माननीय श्री मोदी जी ने अपना पुत्र-धर्म निभाया. बहुमत भरे इस विजयोल्लास से उन्मत्त न हो वरन् शालीनतापूर्वक भारत माँ के सुमंगल कार्यों में एकजुट हो कटिबद्ध होने से पहले अपनी जननी का आशीर्वाद लेने पहुँचे, माँ जो मानव मात्र की प्रथम गुरु है, विश्व गुरु है. जिस माँ ने उन्हें उन्नति के इस उच्च शिखर पर पदासीन किया उस पद की खुशखबरी पाकर सबसे पहले उन्होंने उस माँ की चरण-वंदना कर माँ के दूध का कर्ज़ चुकाने का प्रयास किया जो भारत के लिए ही नहीं विश्व के लिए सराहनीय है, वंदनीय है. माँ-बेटे द्वारा कृतज्ञता-ज्ञापन और उसकी रसभरी मधुर स्वीकारोक्ति जनता के सम्मुख हुयी; पर एक माँ के रूप में मेरे हृदय-तन्तु को प्रधानमंत्री माननीय श्री नरेन्द्र मोदी जी की जो अभिव्यक्ति अन्त:स्थल के कोर तक छू गयी, वह थी माँ के प्रति उनके निर्मल प्रेममयी चरित्र की दृढ़ता, माँ के प्रति लगाव, माँ के प्रति उनकी पावन-पुनीत आत्मीयता. चरण-स्पर्श, मंगलमय चन्दन-रोली टीका, आभारस्वरूप, परंपरास्वरूप केवल बाह्य दिखावा-मात्र नहीं था क्योंकि इसके तुरंत ही बाद नरेन्द्र जी अपनी आदरणीय प्रिय माँ का हाथ थाम चयनित प्रधानमंत्री नहीं वरन् एक प्रिय पुत्र के रूप में उनके साथ समय बिताने के लिए, उनके आँचल तले सुखानुभूति की प्राप्ति हेतु घर में प्रवेश कर गए. यद्यपि जनता के समक्ष एक आदर्श पुत्र का मान रखा, सबके सामने चरण छुए और तिलक लगवाया तथापि अंतरंगता, माँ-बेटे का पावन पुनीत संबंध व्यक्तिगत है. आंतरिक आत्मीयता प्रदर्शन की वस्तु नहीं है वह तो एक ऐसी अनुभूति है, अभिव्यक्ति है जो दो हृदयों द्वारा एक-दूसरे से आत्मसात हो अनुभूत की जा सकती है. यह ऐसे मधुर पल हैं जहाँ इस अनुभूति के अलावा सब कुछ अदृश्य के पर्दे के पीछे विलीन हो जाता है, किसी का भी अस्तित्व नहीं रहता. नरेन्द्र जी की, माँ के साथ इन क्षणों को अनुभूत करने की कामना हेतु प्रधानमंत्री चयनित होते ही सर्वप्रथम उनके साथ समय बिताना, उनकी चारित्रिक दृढ़ता का द्योतक है. वह माँ के अहसानों को भूले नहीं हैं - उनके इस कर्म से, विजयोल्लास की इस स्थिति में भी, गर्व की जगह गौरव की प्रधानता झलक रही थी. नये प्रधानमंत्री माननीय श्री नरेन्द्र मोदी जी से अपेक्षा करती हूँ, आशा करती हूँ, और साथ ही शुभ कामनाएँ प्रेषित करती हूँ कि जिस तरह उन्होंने मातु जननी के प्रति अपना कर्तव्य निभाया है, अपना प्रेम दर्शाया है, उसी निष्ठा से वे मातृभूमि के प्रति, भारत माँ के प्रति कटिबद्ध हों. वे इस गरिमामय पद द्वारा अपने सुमंगल कर्तव्यों में सफलता प्राप्त कर सभी भारतीय एवं प्रवासी भारतीयों को गौरवान्वित करें.

अंतर्राष्ट्रीय आर. सी. यूनिवर्सिटी बेलग्रेड, सर्बिया के चांसलर पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि के दिल्ली कैम्पस कार्यालय में एक परिचर्चा गोष्ठी का आयोजन किया गया जिसमें कैनेडा चैप्टर के डाइरेक्टर की हैसियत से मैंने भाग लिया.

इस संबंध में डॉ. शशि व मैंने अंतर्राष्ट्रीय महात्मा गाँधी विश्वविद्यालय, वर्धा के कुलाधिपति डॉ. नामवर सिंह तथा हिन्दी के प्रख्यात कवि, ज्ञानपीठ द्वारा पुरस्कृत, पद्मभूषण श्री कुँवर नारायण के साथ विचार-विमर्श किया. परिचर्चाओं के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तावित अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी पर विचार-विमर्श

हुआ. डॉ. नामवर सिंह जी से भेंट तथा श्री कुँवर नारायण जी, भारती जी, एवं अपूर्व जी से भेंट जहाँ एक ओर अत्यंत आत्मीय थी वहीं साहित्य के प्रति गम्भीर विचार-विमर्श वाली भी. नामवर सिंह जी एवं कुँवर नारायण जी व उनके परिवार द्वारा वसुधा एवं मेरे उपन्यास 'कैकेयी चेतना-शिखा' के प्रति दी गई प्रशंसा की आभारी हूँ. उनके द्वारा दिया गया समय, उनका आत्मीय स्नेह ही मेरे लिए अमूल्य निधि है, ऊपर से इस अतिरिक्त प्रशंसा ने सोने में सुहागा का काम किया है, लेखन के प्रति मेरा उत्साहवर्धन किया है.

आर.सी. विश्वविद्यालय के हाल ही के अनुसंधान के आधार पर विश्व के भारतवंशी रोमाओं की गृहभाषा रोमानी को हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के समान माना गया है. श्री भिक्खु चमनलाल, पद्मश्री वीर राजेन्द्र ऋषि, डॉ. कैनेरिक, डॉ. एक्टन थॉमस (इँग्लैंड), डॉ. इयान हैनकॉक (यू.एस.ए.), डॉ. हृस्टो क्यूचकोव (जर्मनी) व पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि भाषा वैज्ञानिकों के अध्ययन के आधार पर रोमानी में हिन्दी, पंजाबी, मराठी, गुजराती, हरयाणवी, राजस्थानी आदि भाषाओं के पचास प्रतिशत शब्द प्रचलित हैं. इस विषय पर दिल्ली तथा अन्यत्र अंतर्राष्ट्रीय रोमानी हिन्दी संगोष्ठियाँ प्रस्तावित हुईं. गोष्ठी में यह भी बताया गया कि आर.सी. विश्वविद्यालय के देश-विदेश में बीस चैप्टर (अध्ययन केन्द्र) कार्यरत हैं.

गोष्ठी में आर.सी. विश्वविद्यालय के पदाधिकारी डॉ. शशि (दिल्ली), इन पंक्तियों की लेखिका श्रीमती **स्नेह** ठाकुर (कैनेडा), सभ्यता संस्कृति की सम्पादक डॉ. ऋचा सिंह, रिसर्च फाउंडेशन के सचिव (प्रबंध) डॉ. अनिल कुमार सिंह, इंद्रा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय कि व्याख्याता डॉ. ममता सिंह तथा साहित्य, संस्कृति के शोधार्थियों ने भाग लिया. रोमा विशेषज्ञ डॉ. निधि त्रेहण (यू.एस.ए.) से फोन द्वारा वार्तालाप हुआ.

डॉ. आर.पी. सिंह जी से राष्ट्रपति भवन में दो बार मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ. अपने अत्यंत व्यस्त समय में से भी वे हमसे मिलने का समय निकाल लेते हैं यह सौभाग्य का विषय है. उनका साहित्य ज्ञान सराहनीय है. साहित्यिक विचार-विमर्श में समय कैसे गुज़र जाता है, पता ही नहीं चलता.

कथा यू.के. के श्री तेजेन्द्र शर्मा, यमुना नगर डी.ए.वी.गर्ल्स कॉलेज की प्रधानाचार्य डॉ. सुषमा आर्या एवं ज़ामिया मिलिया कॉलेज के डॉ. अजय नावरिया के अथक परिश्रम से संयोजित दो दिवसीय प्रवासी साहित्य सम्मेलन बड़े धूमधाम से सम्पन्न हुआ. विशिष्ट अतिथि हेतु एवं मेरी पुस्तक "कैकेयी - चिंतन के नव आयाम : संदर्भ तुलसीकृत श्रीरामचरितमानस" शोधग्रंथ के विमोचन हेतु आभारी हूँ.

चित्रा मुद्गल जी की आत्मीयता मेरे लिए परम सौभाग्य है. उनसे मिलने पर यह अहसास गहराता है कि समय थम क्यों नहीं जाता. वह इतना प्यार उड़ेल देती हैं कि लगता है कि बस इसी में सराबोर हो बैठे रहो. इस बार भी यही हुआ. उनके आवास से वैसे ही उठने का मन नहीं करता ऊपर से उनका आग्रह कि थोड़ी देर और बैठो, पैरों को कील-कवलित कर देता है. पहले उर्मिला शिरीष जी के साथ हँसते-बतियाते कार का सफ़र और फिर चित्रा जी के यहाँ जमावड़ा, मन आनंदित हो न कैसे! मन-मयूर तो आनन्द की ताल पर नाचेगा ही नाचेगा.

अम्बेडकर विश्व विद्यालय दिल्ली के हिंदी विभाग के तत्वावधान में, समन्वयक डॉ. सत्यकेतु सांकृत के अथक प्रयासों से 'प्रवासी हिंदी साहित्य' पर आयोजित दो दिवसीय अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी

सफलतापूर्वक सम्पन्न हुई. प्रथम सत्र - प्रवासी साहित्य : एक नयी सांस्कृतिक अस्मिता में मुख्य अतिथि बनाने हेतु आभार.

साहित्य अकादमी दिल्ली की साहित्यिक परिचर्चा में बैठने का सौभाग्य मिला. ज्ञानवर्धन के साथ-साथ नए-पुराने परिचितों का सान्निध्य आनंदित कर गया.

श्री उपेन्द्र नाथ के साथ अनुवाद की स्थिति पर चर्चा हुई. वे स्वयं एक अच्छे अनुवादक हैं. इनकी मौलिक रचनाएँ एवं अनूदित रचनाएँ वसुधा में प्रकाशित हुई हैं.

हर बार की तरह इस बार भी डॉ. गंगा प्रसाद विमल जी से मिलना ज्ञानवर्धक एवं आत्मीय रहा. वसुधा समय-समय पर उनकी रचनाओं से समृद्ध होती है यह मेरा सौभाग्य है.

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के श्री अशोक जजोरिया जी से भेंट-वार्ता हुई. साहित्य की दशा और दिशा पर गम्भीर चर्चा हुई. गगनाञ्चल की हरिश्चंद विशेषांक की एक प्रति भी उन्होंने मुझे भेंट की. इस विशेषांक में मेरी रचना 'हिन्दी के प्रणेता - युग प्रवर्तक भारतेन्दु हरिश्चंद्र' प्रकाशित हुई है. साथ ही इसी अंक में मेरी पुस्तक 'आज का समाज' की श्री मही लाल कैन द्वारा हृदयग्राही समीक्षा भी प्रकाशित हुई है. श्री अशोक जजोरिया जी एवं श्री मही लाल कैन जी, दोनों के ही प्रति आभारी हूँ.

विष्णु प्रभाकर संस्थान के श्री अतुल प्रभाकर, श्रीमती अनुराधा प्रभाकर एवं गाँधी हिंदुस्तानी साहित्य सभा की मंत्री सुश्री कुसुम बेन तथा श्री प्रसून लतांत के तत्वावधान में विष्णु प्रभाकर एवं काका कालेलकर की स्मृति में साहित्यिक पत्रकारिता विषय पर एक संगोष्ठी आयोजित हुई जिसमें विशिष्ट अतिथि के रूप में मुझे आमंत्रित किया गया. आभारी हूँ. विष्णु जी व उनके परिवार ने ठाकुर साहब व मुझे सदैव ही परिवार की सी आत्मीयता दी है. विष्णु जी को श्रद्धांजलि देते हुये जहाँ एक ओर मन भर आया था वहीं गौरव का एहसास हुआ था कि मुझे उनका स्नेह, उनका मार्गदर्शन प्राप्त हुआ. वसुधा अतीत में उनकी रचनाओं से समृद्ध हुई है और भविष्य में भी समृद्ध होती रहेगी क्योंकि इस हेतु वे अपने साहित्य का काफी कुछ अंश मेरे पास छोड़ गए हैं.

राहुल देव जी सदा की भाँति ही प्रियता से मिले. उनकी व्यावहारिक, गंभीर वार्ता आपको कई धरातल पर सोचने के लिए मजबूर कर देती है. उनसे विचार-विमर्श सदा ही लाभदायी होता है.

डॉ. सीतेश आलोक जी की सदाशयता भुलाए नहीं भूलेगी. किसी से लेकर उन्होंने मेरा उपन्यास "कैकेयी चेतना-शिखा" पढ़ा और अपने एक वाक्य से गागर में सागर भर घोषित कर दिया कि **स्नेह** जी ने कोयले की खान से हीरा निकाला है. ये प्रशंसात्मक वचन ऊर्जा भरते हैं, कुछ कर गुज़रने का आमंत्रण देते हैं, प्रेरणा देते हैं. तहे दिल से आभारी हूँ.

डॉ. विवेक मिश्र, श्री शिवानन्द द्विवेदी, श्री आशीष कांधवे, सुश्री विपिन चौधरी, सभी का प्रेमपूर्ण सान्निध्य आनंदित करता रहा.

अनिल जोशी जी, सरोज शर्मा जी, नरेश शाण्डिल्य जी, अलका सिन्हा जी, सत्या त्रिपाठी जी, शिव कुमार जी, अतुल जी, नारायण जी, विमलेश कांति वर्मा जी, हरजेन्द्र चौधरी जी, व पूरी टीम के अकथ परिश्रम से अक्षरम का समारोह सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ. इन सब का अपनत्व और सब की सदाशयता हमारी अमूल्य निधि है.

लखनऊ विश्व विद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ. कालीचरण स्नेही एवं डॉ. पवन अग्रवाल के संयोजन में दो दिवसीय सफल अंतर्राष्ट्रीय आयोजन हुआ. पवन जी ने शुरू से अंत तक अपने अत्यंत व्यस्त समय में भी जिस जिंदादिली से हमें तवज्जो दी है उसके लिए ठाकुर साहब व मैं तहेदिल से उनका शुक्रियादा करते हैं.

वेद प्रकाश वटुक जी व अचला शर्मा जी के बीच में हमारा कमरा था अत: भोजन के समय व अन्य खाली समय में हम लोगों की जब देखो तब गोष्ठी हो जाती थी, कभी गंभीर और कभी हँसी-ठहाकों की जो अविस्मरणीय रहेगी.

शंभु नाथ जी व चंदा जी के साथ बिताया आत्मीय समय बहुमूल्य होता है. हाँ अवधि हरदम कम ही प्रतीत होती है चाहे कितना भी समय साथ में मिल जाए. दोनों के द्वारा दी गई आत्मीयता हेतु ठाकुर साहब व मैं आभारी हैं.

हरदम की भाँति इस बार भी दाऊजी ने हमारा लखनऊ आवास अपने अमूल्य समय से खुशहाल बनाया. उनसे मिलना ठाकुर साहब व मेरे लिए हरदम ही सुखद होता है. मनोरमा भाभी व दाऊजी के अपनेपन की आभारी हूँ.

डॉ. श्रीभगवान शर्मा के सौजन्य से, डॉ. शशि तिवारी के सान्निध्य में, आगरा लायन्स क्लब के श्री एवं श्रीमती गोबिंद प्रसाद सिंघल, श्री सतीश बेरी, श्री मोहन अग्रवाल के संयोजन में इंपीरियल होटल में एक भव्य आयोजन हुआ. विशिष्ट अतिथि के रूप में मुझे आमंत्रित किया गया था. पर ठाकुर साहब व मुझे जीतना अपनापन वहाँ मिला उसमें मेरा सब अतिथिपन गुल हो गया, लगा हम तो यहाँ सदैव से ही उनके बीच थे. साथ ही डॉ. श्रीभगवान शर्मा एवं डॉ. शशि तिवारी की आत्मीय सदाशयता से सदा की भाँति ठाकुर साहब व मैं अभिभूत हुए.

नागरी प्रचारणी सभा आगरा की अध्यक्ष रानी सरोज गौरिहार जी का भावभीना आतिथ्य स्मृति में चिर अंकित हो गया है. सरोज जी की शालीनता अनुकरणीय है. महिला लेखिका समिति ने जो एक बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य कर रही है और जिसने विशिष्ट अतिथि के रूप में मुझसे दो छात्राओं को साहित्य की दिशा में पुरस्कृत करवाया, मुझे गौरवानुभूति से ओत-प्रोत कर गया. सुप्रसिद्ध नागरी प्रचारणी सभा के मानस सभागार में डॉ. राजकुमारी शर्मा, डॉ. शैलबला अग्रवाल, सुश्री कुसुम शर्मा, सुश्री सत्या सक्सेना, डॉ. शशि तिवारी व प्रिय सरोज जी तथा सुप्रतिष्ठित लेखिकाओं एवं गणमान्य श्रोताओं सभी को आभार सहित नमन.

डॉ. शशि तिवारी जी के सौजन्य से हिन्दी संस्थान के निदेशक डॉ. चन्द्रकान्त त्रिपाठी जी से साहित्यिक चर्चा हुयी. उन्होंने अपना अमूल्य समय दिया, आभारी हूँ.

डॉ. हरिमोहन शर्मा व श्रीमती शर्मा के स्वागत सत्कार के हम दोनों आभारी हैं. उनके आवास के परिसर में अपनी ओर आकर्षित करता तमाल वृक्ष द्वार तक पहुँचने से पहले ही आपका मन मोह लेता है. ऊपर से दंपत्ति का मीठा स्वभाव सोने में सुहागा.

नारी दिवस पर इंडिया इंटरनेशनल सेंटर में आयोजित किए गए भव्य समारोह में, कुलाधिपति डॉ. प्रिय रंजन त्रिवेदी, चेयर पर्सन श्रीमती रेखा उदित, चेयर मैन डॉ. के.के.झा, वर्ल्ड प्रेसीडेंट डॉ. चार्ल्स मरसिएका, चार बार हिमालय की चोटी पर चढ़ने वाली प्रथम भारतीय महिला डॉ. संतोष यादव, डैनिश एम्बैसी के श्री मार्टिन मिकेलसेन, इंटरनेशनल यूनिवर्सिटी स्कूल ऑफ मेडिसन के वाइस-प्रेसीडेंट प्रो. डॉ. रवि जई, तथा ब्रह्मकुमारी की मा व दीदी के गरिमामय कर-कमलों द्वारा "इंटरनेशनल वीमेन एक्सलेन्स अवार्ड 2014" प्राप्त करना मेरा सौभाग्य था. सबके प्रति आभारी हूँ.

शांति सहयोग की वाइस प्रेसीडेंट श्रीमती नगिंदर ऋषि को मेरा सादर नमन. वे एक बहुत ही महत्वपूर्ण काम कर रही हैं, साधनहीन बच्चो को शिक्षा प्राप्त करवा रही हैं. जिस सुचारु रूप से स्कूल चल रहा है उसे देखकर अभिभूत हो गयी. साधुवाद.

मध्य प्रदेश साहित्य अकादमी, भोपाल के निदेशक डॉ. त्रिभुवन नाथ शुक्ल तथा जबलपुर के जानकी रमण महाविद्यालय के डॉ. आभिजात कृष्ण त्रिपाठी, डॉ. राणा, डॉ. वेदान्त शुक्ल के संयुक्त तत्वावधान में अंतर्राष्ट्रीय साहित्य संवाद का दो दिवसीय भव्य आयोजन हुआ, विषय था - साहित्य, कला, संस्कृति का अंत:संबंध. ऐसे आयोजन में विशिष्ट अतिथि के रूप में आमंत्रित होने हेतु डॉ. त्रिभुवन नाथ शुक्ल जी एवं डॉ. अभिजात कृष्ण त्रिपाठी जी की आभारी हूँ. कैनेडा से मैं, नार्वे से डॉ. सुरेश चंद्र शुक्ल तथा दुबई से डॉ. बीना बुदकी थे. राष्ट्रीय स्तर पर जहाँ पटना से श्री श्रीधर परारकड़ जी, श्री शत्रुघ्न जी, श्री रवीन्द्र शुक्ल पूर्व शिक्षा मंत्री उत्तर प्रदेश, दिल्ली से श्री प्रवीण आर्य, ग्वालियर से डॉ. जगदीश तोमर जी, अलीगढ़ से डॉ. कृष्ण मुरारि मिश्र, मुंबई से श्री ऋषिकुमार तथा डॉ. चमन लाल सप्रू ने भाग लिया, वहीं स्थानीय मूर्धन्य विद्वान भी उपस्थित थे; मेरी प्राचार्या श्रीमती मनोरमा तिवारी, श्री जी.पी. तिवारी, चित्रकूट के नाते मेरे भइया पूर्व निदेशक कालिदास अकादमी, उज्जैन आचार्य कृष्ण कांत चतुर्वेदी, कुलपति एम.पी. मेडिकल यूनिवर्सिटी डॉ. लोकवानी, पूर्व कुलपति डॉ. सुरेश्वर शर्मा सहित अनेक विद्वान. कवि सम्मेलन की बहार का तो कहना ही क्या. एक से एक हृदयग्राही कवियों ने समां बांध दिया था.

उद्घाटन सत्र में मेरी नयी प्रकाशित पुस्तक "कैकेयी : चिंतन के नव आयाम - सन्दर्भ : तुलसीकृत श्रीरामचरितमानस" शोध ग्रंथ का लोकार्पण हुआ. मेरे अपने शहर जबलपुर में मेरी पुस्तक का लोकार्पण होना मेरे लिए गर्व का विषय था. भाव-भीना गौरवान्वित भाव हृदय को आलोड़ित कर गया. आयोजन के संयोजकों की आभारी हूँ.

जबलपुर में मैंने अपने जीवन के कुछ वर्ष बिताये हैं अत: उन मधुर स्मृतियों में सराबोर हो आकंठ डूब जाना अत्यन्त स्वाभाविक था. पर जो स्वयं की सोच के बाहर था वह था इतने समय के अंतराल के बाद भी सभी परिचितों का वही आत्मीय प्यार पाना जैसे प्रवास काल का अस्तित्व ही न था, जैसे हम कभी विलग ही न हुए थे. मेरे साथ-साथ उन सबकी स्मृति भी कालजयी थी. छोटे-बड़े हर रिश्ते ने, प्राचार्या, धमा-चौकड़ी मचाने वाली मित्र-मण्डली, पढ़ाई गई छात्राएँ, सबने स्नेह-पाश में बाँध लिया. स्मृतियों का पिटारा जो खुला तो वातावरण ठहाकों से गूँज उठा. उम्र के इस दौर में आकर, हम सब मर्यादित रहने की पुरजोर कोशिश करने के बाद भी छोटे-बड़े का रिश्ता भुला बैठे थे. प्राचार्या और शिष्या, मित्र-मण्डली के रूप में जुड़ समवयस्क हो गए थे. सभी ने अपनी-अपनी स्मृति के ख़जाने से चुन-चुन वो हीरे-मोती निकाले कि हँसी का फ़व्वारा बंद होने का नाम ही न लेता था.

इन क्षणों के लिए सभी की आभारी हूँ. प्राचार्या श्रीमती मनोरमा तिवारी जी ने न केवल सम्मेलन में आकर मुझे कृतार्थ किया वरन् मेरे आगमन की सूचना पाते ही आनन-फानन में गुंजन कला सदन की साहित्यिक गोष्ठी का आयोजन भी कर डाला जो गणमान्य साहित्यकारों की उपस्थिति से सम्मानित था. डॉ. आभा दुबे, श्रीमती आशा पंडया, डॉ. अनामिका तिवारी, श्रीमती छाया त्रिवेदी, श्रीमती लक्ष्मी शर्मा व मनोरमा बहनजी के काव्य रसास्वादन से मन आनंद की अतल गहराइयों से निकलने का नाम ही नहीं ले रहा था. समय यद्यपि की अपनी गति से चल रहा था क्योंकि वह कभी भी किसी के लिए भी रुकता नहीं है, अत: घड़ी की सुइयाँ अपनी अविराम गति से समय चक्र का चक्कर अवश्य लगा रही थीं पर हम सबके लिए तो थम ही सा गया था. हाँ उस थमे समय को फ़ोटोग्राफ़र

दीवान भाई ने अपने कैमरे में, हम सबको अनेक मधुर गीत सुनाते हुए, चित्रों की परिधि में अवश्य बांध लिया था. उन स्मृति-चिन्हों के लिए उनकी आभारी हूँ.

मनोरमा बहनजी ने पहले की ही तरह इतना प्यार दिया कि आँखे भर आईं. उनके व्यवहार में तिलमात्र का भी अन्तर नहीं आया था जिससे अनायास ही उनके प्रति आदर व श्रद्धा से नतमस्तक हो गई. मनोरमा बहनजी की पुस्तक 'अनन्या' काव्य-संग्रह पाकर धन्य हुई. जीजा जी, मनोरमा बहन जी के पति श्री जी. पी. तिवारी का आभार प्रकट करने के लिए शब्द कम पड़ रहे हैं. गंभीर से गंभीर बात को भी हँसी-ठहाकों के मध्य बता जाने की उनकी कला की कायल हूँ. ईश्वर से प्रार्थना है कि यह जोड़ी इसी तरह हँसती-हँसाती, स्वस्थ, सुखपूर्वक दीर्घायु हो.

छाया जी और लक्ष्मी जी की पुस्तकों ने भी मुझे समृद्ध किया. दोनों के प्रति आभारी हूँ.

आशा और मैंने साथ-साथ पढ़ाया है. पुरानी स्मृतियों का भंडार जितना हम उलीचते गए उतना ही खाली होने की जगह वह भरे का भरा लग रहा था, घटने में ही न आ रहा था. विरोधाभास अवश्य है पर अनुभूति का क्या करें! पुरानी बातें, पुराने अनुभव उछल-उछल स्वयं की उपस्थिति दर्ज़ कराने को लालायित थे.

मनोरमा भाभी, सुभद्रा कुमारी चौहान की बड़ी पुत्रवधु, ने पूर्ववत ही स्नेहिल व्यवहार किया. इस प्यार में आँसू भी छलके - बड़े भइया, श्री अजय चौहान हमारे बीच नहीं थे.

संस्कारधानी जबलपुर के हृदय सम्राट, हमारे प्रेरणा-श्रोत, बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी, स्वतंत्रता सेनानी, महापौर, पूर्व सांसद, साहित्यकार, शिक्षाविद, समाजसेवी, पद्मश्री पं. भवानी प्रसाद तिवारी जी के दर्शनों से वंचित होना मन को अंदर तक कचोट गया. उनकी रचित पंक्तियाँ आज भी मेरे कानों में गूँजती हैं - "स्नेह तो विस्तार है बंधन नहीं है

अरे, जीवन गीत है, क्रंदन नहीं है
विश्व के समताल पर स्वर कर्म मेरा
चल रहा हूँ क्योंकि चलना धर्म मेरा."

जबलपुर की भूमि को अपने पावन जल से सिंचित करती माँ नर्मदे से प्रेरणा ले उनका कहना,

"दुर्गम गिरी को चीर सफलता के रण में बढ़ते जाना
गिर कर किसी गर्त में भी दूनी उमंग से मुस्काना
देवि नर्मदे, हमें सिखा निश्चित पथ पर बहते जाना
तेरे कलरव से सीखें हम अपनी ही भाषा में गाना."

आदरणीय तिवारी जी ने जबलपुर के प्रति, राष्ट्र के प्रति, एवं मानवता के प्रति अपना धर्म अपने कर्मों से खूब निभाया.

सादर, सप्रेम, उपहारस्वरूप दिये गए उनके 'जन्मशती - स्मृति ग्रंथ' ने जहाँ एक ओर मुझे आदरणीय एवं प्रिय तिवारी जी के आत्मिक दर्शन कराए वहीं आश्चर्यमिश्रित मेरी खुशी का ठिकाना न रहा जब मैंने देखा कि इसकी कुशल संपादिका तिवारी जी की पुत्रवधू डॉ. अनामिका तिवारी हैं, जो मेरी दोस्त, छोटी बहन-स्वरूप हैं.

तिवारी जी की पुत्री डॉ. आभा दुबे जो मेरी प्रिय छात्रा रह चुकी है, ने भी मुझे अपनी डाक्टरेर की थीसिस 'पं. भवानी प्रसाद तिवारी का व्यक्तित्व - कृतित्व' देकर आश्चर्यचकित कर मेरा सर गर्व से ऊँचा कर दिया. आभा की सबसे बड़ी बात जो मन को छू गई वह थी उसका पहले की ही भाँति बच्ची जैसा मचल कर कहना, 'जानती हूँ किताबें भारी हैं पर आपको ले जानी हैं." प्रश्न नहीं कि ले जा सकती हैं या नहीं, बस पूर्ववत वही चंचल, अधिकार भरा, मचलता हुआ आग्रह. यह कहने का उसने मुझे मौका ही नहीं दिया कि यदि वो ऐसा न भी कहती तो भी इन पुस्तकों को ले जाना मेरा ही सौभाग्य है. हाँ, उसकी पूर्ववत चंचलता, उसका वह अपनापन मन को अवश्य मोह गया.

भवानी प्रसाद तिवारी जी, जिन्हें हम पापा जी कहते थे, की पुत्रियाँ प्रतिभा, आभा, चित्रा, ममता के व्यवहार में कभी भी मैंने घमंड की बू नहीं पाई. प्रतिभा सदा से गंभीर, सुमधुर मितभाषिणी, आभा चंचल तितली-सी और चित्रा व ममता इन दोनों के बीच की. इन्हीं के साथ की एक और मेरी प्रिय छात्रा मिली, कुसुम दुबे जिन्होंने जिस स्कूल में पढ़ा वहीं पढ़ाया भी. जहाँ से विद्या ग्रहण की वहीं विद्या दान भी. कुसुम इस आदर-प्यार से मिली जैसे अभी भी वह छात्रा हो और मैं अध्यापिका. इतने सालों के बाद भी मेरी इन छात्राओं में आत्मीयता की कमी न थी.

प्रभा पात्रा जो मेरे साथ पढ़ाती थीं इस उमग भरे उलाहने के साथ मिलीं कि, मैं क्यों विदेश चली गई बस वापिस आ जाऊँ, उनके इस मिलन पर मैं क्या कोई भी हृदय पसीजे बिना न रहता. जवाब में क्या कहती - वह भी और मैं भी भली-भांति इस तथ्य को जानती हैं कि लड़कियों की अधिकतर नियति जहाँ पली-बढ़ी हैं उस शहर को छोड़ कर जाने की ही है. प्रभा का यह आग्रह कि बस अब वापिस आ जाऊँ, बहुत हो गया विदेश में रहना, उसके प्यार के अहसास को गहरा गया.

साधना उपाध्याय की मित्रता मेरे लिए अमूल्य है. साधना सम्मेलन में मेरे साथ रहीं. हम दोनों बीच-बीच में समयावकाश पा कोई-न-कोई कोना ढूँढ ही लेते थे. बातों का सिलसिला समाप्त होने में ही न आता था. एक बात पूरी भी न हो पाती थी कि दूसरी मचल कर बीच में कूद पड़ती थी. हम दोनों अनायास हँस पड़ते थे कि पहले पहली बात ख़तम कर ली जाए या दूसरी का समाधान किया जाए. बातों का गुच्छा हबड़ा-तबड़ी में सुलझने की जगह उलझ-उलझ जाता था.

साधना आजकल 'त्रिवेणी' का सम्पादन कर रही हैं यह जानकर आश्चर्य नहीं हुआ. जबलपुर के नामी साहित्यकार पिता की पुत्री से जाने-अनजाने यही अपेक्षा थी. अत: सुनकर ख़ुशी का होना स्वाभाविक ही था कि वे अपने पिता श्री रामानुज लाल श्रीवास्तव, चाचा जी का नाम रोशन कर रही है.

साधना की पुस्तक 'दस पंच' नाटिका संग्रह पाकर रोमांचित हो उठी. न जाने कितनी स्मृतियाँ सतह पर आने के लिए मचल-मचल उठीं. पुन: आँसू झलके. साधना के बड़े भाई श्री विनोद श्रीवास्तव जो सतमासा पैदा होने के कारण खस्ता नाम से प्रसिद्ध हो गए थे और हम शुरू से ही उन्हें खस्ता भइया कहा करते थे, हम लोगों की नाटक मण्डली के सर्वेसर्वा थे. उनका प्यार भी हमें खूब मिला और रोब भी जोरदार हुआ करता था. उनके मार्गदर्शन में हमने अनेक सांस्कृतिक कार्यक्रम किए. साधना के पति उपधाय्य जी भी नहीं रहे जो बहुत अच्छे तबलावादक थे. साधना स्वयं भी बहुत अच्छी गायिका हैं. विज्ञान के साथ-साथ उन्होंने संगीत की शिक्षा भी प्राप्त करी थी.

हम दोनों ही इस बात पर हँस पड़े कि उसने अध्ययन का क्षेत्र विज्ञान चुना और मैंने राजनीतिशात्र पर पत्रिका हम हिन्दी की चला रहे हैं.

कदाचित् आदरणीय, अनुकरणीय विनोबाभावे जी द्वारा जबलपुर को दिये गए नाम संस्कारधानी का ही यह प्रताप है कि हम संस्कृति, संस्कार से इस तरह जुड़े हुए हैं.

हमारे सांस्कृतिक कार्यक्रमों की इस मण्डली से जुड़े, आज के सुविख्यात कवि, सुमधुर गीतकार एवं पत्रकार श्री मोहन शशि भी इस सम्मेलन में थे अत: समय मिलते ही पुरानी यादों का उभरना और उनके उभरते ही उस समय की नदानियों पर हँसी के फव्वारे छूटना अस्वाभाविक न था. राजनीतिज्ञ, समाज सेवी, साहित्य मर्मज्ञ सेठ गोविंद दास जी से ड्रामा के लिए बचकानी हरकतों से चंदा उगाहने जैसे न जाने कितने दृश्य आँखों के आगे मचल गए.

नगर पंचायत भेड़ा घाट के अध्यक्ष श्री दिलीप राय के ठाकुर साहब व हम आभारी हैं जिन्होंने 'मार्बल रॉक्स' की जल यात्रा को अविस्मरणीय बना दिया. उनका सुमधुर व्यवहार सदैव याद रहेगा.

अर्चना डेनियल जो मेरे साहित्य पर पी.एच.डी. कर रही है एवं उनके माता-पिता के साथ बिताया गया समय अविस्मरणीय है. परिवार की सदाशयता के हम दोनों आभारी हैं.

डॉ. तनुजा चौधरी, साइंस कॉलेज की हिन्दी विभागाध्यक्ष, सम्मेलन में मिलने के बाद भी अपने अति व्यस्त समय में से समय निकाल कर मिलने आईं. यह उनका बड़प्पन है. उनके साथ अत्यंत महत्वपूर्ण साहित्यिक चर्चा हुई.

बिदाम बाई गुगलिया उच्चतर माध्यमिक बालिका विद्यालय की प्राचार्या श्रीमती ज्योति मेहता एवं वरिष्ठ शिक्षिका डॉ. शशिकला लढ़िया ने थोड़े से समय में ही विद्यालय में एक उत्कृष्ट समारोह का आयोजन कर डाला जो बहुत ही सराहनीय था. छात्राओं ने जिस तत्परता, जिस शालीनता, जिस मनो भाव से भाग लिया वह व्यवहार विद्यालय की अपूर्व क्षमता का द्योतक है.

पुराने स्वैटर को उधेड़ कर कर जैसे उसकी ऊन से नये स्वैटर का निर्माण किया जाता है उसी तरह हमने पुरानी स्मृतियों को उघेड़ कर जहाँ उनका रसास्वादन किया वहीं भविष्य की धरोहर के रूप में नई स्मृतियों का निर्माण भी.

इंटरनैशनल यूनिवर्सिटी स्कूल ऑफ मेडिसन के वाइस प्रेसीडेंट प्रो. रवि जई ने पर्यावरण कॉम्प्लेक्स में सीनियर संस्था के लिए आयोजित समारोह में आमंत्रित किया. आयोजन बहुत ही सफल रहा. स्वास्थ्य और साहित्य का मिश्रण अपूर्व था. आमंत्रण के लिए व विशिष्ट अतिथि के रूप में प्राप्त स्नेह के लिए आभारी हूँ.

वसुधा के दो शुभ-चिंतक एवं साहित्यकार, हमारे परिवार के परम स्नेही मित्र साहित्य के प्रति अपनी विद्वत्ता हेतु सम्मानित हुए. डॉ. अशोक चक्रधर जी पद्मश्री से सम्मानित किए गए व श्रीमती ममता कालिया जी अखिल भारतीय वनमाली कथा सम्मान से. यह केवल हमारे लिए व वसुधा के लिए ही गर्व की बात नहीं है वरन् यह सभी साहित्यकारों एवं साहित्यप्रेमियों के लिए गर्व का विषय है. अनेकानेक बधाई.

वसुधा की कवयित्री एवं स्नेही मित्र श्रीमती सरोज श्रीवास्तव की पुस्तक "कमल पुरइन और तुम" का दिल्ली में बहुत ही भव्य रूप से गणमान्य साहित्यकारों एवं श्रोताओं की उपस्थिति में विमोचन हुआ. बधाई के साथ-साथ, मुझे दिए गए उनके आत्मीय उपहार के प्रति धन्यवाद व आभार. ईश्वर करे काव्य-साधना सहेली बन सदा उनके आस-पास मंडराती रहे और वे काव्य-संग्रहों का सृजन करती रहें.

वसुधा की साहित्यकार श्रीमती रजनी सिंह की पुस्तकें 'नारी ज्ञान शिरोमणी' एवं 'झिलमिल तारे' प्रकाशित हुई हैं. रजनी जी साहित्य के साथ-साथ समाज-सेवा कार्यों से जुड़ी हुई हैं. रजनी जी को शुभकामनाओं सहित बधाई.

आनन्द जी अपने नामस्वरूप ही हम दोनों से सदा की भाँति आनंदपूर्वक मिले.

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति के अध्यक्ष डॉ. श्रीभगवान शर्मा, सचिव श्री राजेश गर्ग, गौलोक धाम वृंदावन के महामंत्री डॉ. प्रवीण आर्य तथा पब्लिक न्यूज़ के डाइरेक्टर श्री अमनदीप भरद्वाज के द्वारा दिये गए सम्मान की आभारी हूँ. उनके द्वारा प्रदत्त प्रतीक चिन्ह गौमाता अद्वितीय है.

प्रिय कमला सिंघवी जी से मिलना सदैव ही माधुर्यमय रहता है सो इस बार भी था. कमला जी ने आवास के एक कमरे को सिंघवी जी को प्राप्त प्रतीकों से, स्मृतिचिन्हों से इस प्रकार सजाया है कि वहाँ का एक-एक इंच सिंघवी जी की उपस्थिति दर्ज़ करता है. कमला जी की आत्मीयता के हम दोनों ही आभारी हैं.

दिल्ली के रोटरी क्लब के आमंत्रण हेतु आभार. संगोष्ठी का विषय था गांधी जी की अहिंसात्मक पद्धति. शांति सहयोग की अध्यक्ष डॉ. सुमन अग्रवाल ने इस विषय पर अपने विचार प्रस्तुत किए. यहीं पर अशोक अरोड़ा जी मिले जिन्होंने मुझे अपनी पुस्तक भेंट करी. पेशे से वकील पर साहित्य में भी उसी निष्ठा से कर्मरत. जीवन मूल्यों पर आधारित यह पुस्तक पठनीय है. बधाई.

सुनीति शर्मा जी से वार्तालाप सदा ही प्रेरणादायी, उत्साहवर्धक होता है. कर्मों की श्रृँखला को उत्साह ही कड़ी-दर-कड़ी जोड़-जोड़ कर आगे बढ़ाता है. उनके उत्साहवर्धन हेतु आभारी हूँ.

हिन्दी अकादमी दिल्ली से प्रवासी भारतीयों का कहानी संकलन 'देशान्तर' प्रकाशित हुआ है जिसमें कैनेडा से मेरी कहानी प्रकाशित हुयी है. प्रकाशक हिन्दी अकादमी के डॉ. हरि सुमन बिष्ट जी तथा संपादक श्री तेजेंद्र शर्मा जी की आभारी हूँ जिन्होंने मेरी कहानी का चयन किया.

अनिल वर्मा जी की आभारी हूँ जो मेरी पुस्तकों को प्रकाशित कर आप सबके समक्ष लाते हैं.

सबसे ज़्यादा आभारी हूँ आदरणीय एवं प्रिय अम्माँ, कर्नाटक की अम्माँ की जिनके आशीर्वाद-स्वरूप लेखन संभव हो रहा है.

स्वतंत्रता सेनानियों को श्रद्धापूर्वक नमन जिनके रक्त की एक-एक बूँद के हम आभारी हैं. यह उन्हीं का पुण्य प्रताप है कि हम गुलामी की जंजीरों को तोड़ गुलामी से मुक्त हो सके हैं, आज़ाद भारत में श्वास ले रहे हैं. भारत की गरिमा को अक्षुण्ण बनाये रखना सभी भारतीय एवं प्रवासी भारतीयों का धर्म है -

एकाग्रता से जुटे रहें
भारत माँ को
श्रद्धा-सुमन अर्पित करते चलें
बढ़े चलें, बढ़े चलें.

सस्नेह,

स्नेह ठाकुर

वीणावादिनी

मनोरमा तिवारी

वीणावादिनि, हंसवाहिनी
शुभमति दो शुभ गति प्रकाश दो,
पुस्तकधारिणि, बुद्धिदायिनी
सद् विवेक दो, नवलहास दो.

शुभ्रानन पर शांति विराजे
श्वेत कमल पर आसन साजे
मुक्तिदायिनी, तापहारिणी
विमल हृदय में निज निवास दो.

देववंदिता, हे कल्याणी
ब्रह्मा हरि हर की शुभ वाणी
अभय करो हे शक्तिदायिनी
जीवन का सुंदर विकास दो.

मंदहासिनी, जयति भवानी
मंगलकरणी हे गुणखानी
काव्यकला, संगीत स्वामिनी
सुख सौरभ प्रज्ञा पलाश दो.

नमन करें हम देविशारदे
महत् मनीषा पुण्य प्यार दे
ज्ञानांजन दो तमस् हारिणी
अंतस्तल में शुभ सुवास दो.

युग के लौकिक संकट टालो
मन आँगन में देवि पधारो
सत्, शिव, सुंदर श्रेयस्कर दो
विद्या वैभव का विलास दो.

हथियार

चित्रा मुद्गल

अब भी उनकी निगाह मेन्यू से लिपटी हुई है।

उसकी आँखें उनकी ऊपर-नीचे टोहती, सरकती नज़र को छूकर अनमनी-सी इधर-उधर उचकती, अपनी बढ़ती ऊब को नियंत्रित नहीं कर पा रही हैं।

बूढ़े होने को आए, जाने इतना समय क्यों लगाते हैं चीजें चुनने में कि उनके स्वाद की ललक ही क्षीण हो जाए? मेन्यू में दर्ज़ खाद्य वस्तुओं की सूची इतनी लंबी-चौड़ी भी नहीं कि चुनने में भ्रम की स्थिति गह ले! जानते हैं वह और खूब अच्छी तरह से जानते हैं, कितनी मुश्किल से वह उनका साथ पाने के लिए अपने गहरे गुँथे समय में से कुछ समय झटक पाती है। सुबह नींद टूटते ही वह सोचना शुरू कर देती है - आज उसे क्या कुछ निबटाना है और साँझ को उनसे कैसे मिलना है। बीच में कई-कई रोज समय न हथिया पाने के चलते उनसे मिलना संभव नहीं हो पाता। फ़ोन पर बातें करके ही संतुष्ट हो लेना पड़ता है। फ़ोन पर बतियाकर उन्हें संतुष्टि नहीं होती। उन्हें उसकी नौकरी पर खीझ होने लगती है। काम निबटाकर वह क्यों नहीं अपने बॉस से कह पाती कि उसे उनसे मिलने पहुँचना है? कौन-सा कानून उसे मिलने से रोक सकता है? जाने कैसा दफ्तर है उसका! उनके दफ्तर में तो लड़कियाँ रजिस्टर साइन करने के बाद दिखतीं ही नहीं।

बातें सुनते-सुनते वह उनका ध्यान दूसरी ओर मोड़ना चाहती है - उनके जुकाम का मुद्दा उठाकर या उनके साइटिका पेन का हाल पूछ कर। नई किताब कौन-सी पढ़ रहे हैं वे?

'क्या करूँ जुकाम के लिए?' उसके आड़े हाथों लेते ही वे समर्पण की मुद्रा की ओट हो लेते हैं।

वह सयानों-सी समझाने लगती है। केमिस्ट की दुकान से फौरन विटामिन-सी की गोलियाँ मँगवाएँ। सिर पर तौलिया डालकर सुबह-शाम भाप लें। उनकी आवाज़ से लग रहा है, उन्हें हरारत है।

उनका जवाब उसे तनिक आश्वस्त कर देता है। उसे अधिक चिंतित होने की ज़रूरत नहीं। बुखार उन्हें लगता ज़रूर है, मगर थर्मामीटर उनके इस लगने को सिरे से झुठला देता है। कितने अकेले हैं! वह भी इस उम्र में।

जहाँ तक उसे याद है, छह महीने-भर शेष हैं उनके अवकाश प्राप्त करने में। एकाध वर्ष का एक्सटेंशन मिल सकता है उन्हें। एक्सटेंशन पाने के लिए वह विशेष जुगाड़ करने के पक्षधर नहीं हैं। अपने आप मिल जाए तो उन्हें काम करने में कोई आपत्ति भी नहीं। उन्हें पूरी उम्मीद है कि उनके काम की संजीदगी पहचानी जाएगी।

वैसे आज भी उनसे मिलना मुश्किल ही था।

उसकी मेज पर से निबटी फाइलें उठाकर ले जाने आए चपरासी मांदले ने सहसा ही उसे सुखद सूचना दी, 'कपूर साहब लंच के बाद ही चले गए, मैडम! साढ़े चार की उनकी फ्लाइट थी। कोलकाता गए। परसों लौटेंगे, यानी शेष फाइलें वह कल निबटा सकती है। प्रसन्नता की उमड़न दबाते हुए उसने मांदले से जानना चाहा था - अचानक कपूर साहब कोलकाता क्यों चले गए? मांदले रहस्यमयी हँसी हँसा था - उनकी बीवी ने उनके ऊपर तलाक का मुकदमा ठोक रखा है और कल उसकी सुनवाई की तारीख है। बीवी कपूर साहब के साथ रहना नहीं चाहती। बोलती है कि कपूर साहब मर्द नहीं हैं।

उसकी प्रसन्नता काफूर हो गई। मांदले से पूछना चाहती थी, 'कपूर साहब के बच्चे हैं ?'

उनका फ़ोन नंबर मुँह जबानी याद है उसे। सहसा उँगलियाँ नंबर डायल करने लगीं।

संयोग से फ़ोन उन्होंने ही उठाया। उसने उन्हें बताया कि वह चार के करीब दफ्तर छोड़ सकती है। आजाद मैदान क्रॉस कर वह चार बीस तक चर्च गेट 'गेलार्ड' पहुँच जाएगी। उनका क्या कार्यक्रम है?

'सक्सेना के पितियाउत बड़े भाई को हृदयाघात हुआ है आज सुबह। सक्सेना छुट्टी लेकर उन्हें देखने बाम्बे हॉस्पिटल गया हुआ है। उसका काम भी जिम्मे आ पड़ा है।'

'ठीक है' निचला होंठ ऊपरी दंतपंक्ति के नीचे आ दबा।

'दुखी मत होओ। अच्छा सुनो, तुम पहुँचो गेलार्ड। अपना और श्रीवास्तव का काम पाठक के जिम्मे टिकाकर पहुँचता हूँ चार बीस तक।'

उसे उनकी यही विशेषता भाती है। उसके आग्रह को वे टाल नहीं पाते। काम बहुत महत्वपूर्ण है उनके लिए मगर उससे अधिक नहीं।

सबसे अच्छी बात जो उनकी उसे लगती है, वह है - माँ के विषय में वह उससे कभी कुछ नहीं जानना चाहते हैं। जितना समय वह उसके संग व्यतीत करते हैं, उसके बचपन के दिनों में टहलते रहते हैं। दूसरी शादी क्यों नहीं की उन्होंने? शादी वह करे, जिसे अकेलापन काटे। उस घर में रहते प्रतिपल वह उनके पास बनी रहती है। घर के प्रत्येक कोने में उसकी तस्वीरें सजी हुई हैं। घर की कड़ी खोलते ही वह किसी भी तस्वीर से बाहर छलाँग लगा, उनके स्वागत में दौड़कर उनकी टाँगों से लिपट जाती है, 'दिखाइए, मेरे लिए क्या लाए हैं?' जेब से उसकी पसंद की चॉकलेट निकालकर वह बैठक में रखे डिवाइडर पर रखी चॉकलेट खाती उसकी तस्वीर के सामने रख देते हैं। चॉकलेट इकट्ठी होती रहती है। मिलने पर इकट्ठी चॉकलेट वे उसे थमा देते हैं। उनके सामने ही वह चॉकलेट के रैपर हटाकर एक के बाद एक खाना शुरू कर देती है और खाते-खाते हँसी से दोहरी होती हुई उस किस्से पर चमत्कृत हो उठती है, जिसे सुनाते हुए वह बताते हैं कि पिछली रात उन्होंने उसके साथ घर की बैठक में जमकर क्रिकेट खेली। बॉलिंग वह इतनी जोरदार करती है कि उसकी गेंद से रसोई की दो खिड़कियों के शीशे चटख गए। ट्रे में रखी कॉन्टेसा रम की भरी बोतल उलट गई।

जब तक वह रसोई से काँच की किरचें बुहारते, कूदकर वह अपने कद से बड़ा क्रिकेट का बल्ला सँभाले उसी तस्वीर में जा छिपी, जो उनके बिस्तर की साइड टेबल पर सुनहरे फ्रेम में जड़ी रखी हुई है। दुष्ट डर गई थी। कहीं माँ से उसे डाँट न पड़ जाए कि तुम इतनी आक्रामक गेंदबाजी क्यों करती हो भला?

अब बताए, वह अकेले कहाँ हैं?

उनसे मिलकर घर देरी से पहुँचने पर उसका एक ही बहाना होता है - जाने क्यों, अंबरनाथ लोकल अचानक रद्द कर दी गई। लोकल गाड़ियों का बहाना खासा कारगर बहाना है और विलंब से पहुँचने वालों के लिए अचूक रक्षाकवच।

सौतेले पिता, डाबीवली के एक छोटे-से जूता कारखाने में मामूली अधिकारी हैं, जिनकी घर में उपस्थिति घर को चमड़े की असहनीय बू से भर देती है। शायद घर को उस बू से बचाने के लिए ही माँ रसोई में टँगे छोटे-से मंदिर के अगरबत्ती स्टैंड की अगरबत्तियों को कभी बुझने नहीं देती। अक्सर घर देरी से लौटने पर सौतेले पिता भी वही बहाना गढ़ते हैं, जो बहाना वह गढ़ती है। उसे विस्मय इस बात पर होता है कि माँ उसके बहाने पर कभी उग्र नहीं होतीं, जबकि सौतेले पिता का बहाना उन्हें बहाना लगता है।

माँ के सिटकनी-चढ़े बंद कमरे से आती उनकी सिसकियाँ उसे उदास करती हैं।

दीवारों को भेदने वाले उनके आर्त बोल भी, कि कारखाने में किसी स्त्री के साथ चल रही प्रेमपींगों के चलते ही वे घर विलंब से लौटते हैं। लोकल ट्रेन उनकी सुविधानुसार रद्द होती रहती है। सब समझ रही हैं वे। पछता रही हैं। जाने क्यों, उन जैसे रँडुवे के प्रेम के झाँसे में आकर वे पसीज उठीं और अपनी बसी-बसाई गृहस्थी उजाड़ ली जबकि पहली पत्नी की ताई (दीदी) ने उन्हें फ़ोन करके सतर्क किया था - सुनीता की मृत्यु दुर्घटना नहीं थी, आत्मदाह था।

'चीज पकौड़ों के साथ कसाटा आइसक्रीम खाओगी तुम?'

'इतनी देर में यही चुन पाए आप?' वह खीझ दबा नहीं पाई।

'कसाटा तो तुम्हें बचपन से पसंद है।'

'बचपन पीछे छूट चुका।'

'तुम्हारा नहीं।' उनका स्वर संजीदा हो गया।

'पसंद बदल नहीं सकती?'

'बदल गई होती तो मैं फिर कुछ और चुनता तुम्हारी नई पसंद।' उन्होंने संकेत से बेयरे को पास बुलाया।

'किस बात से ऐसा लगता है आपको?'

'बैठते ही तुम मेन्यू मेरी ओर सरका देती हो हमेशा, तुम्हें यकीन है, खाने की जो भी चीजें मैं चुनूँगा, तुम्हारी पसंद की होंगी।'

उसे हँसी आ गई। मेज पर मोतिया बिछ गया।

उनकी तुनक कम नहीं हुई, 'अगर यह सच नहीं है तो मेन्यू स्वयं देख लिया करो।'

हँसी रुक नहीं रही थी। उन्हें तुनकाने में उसे मज़ा आ रहा था, 'अब ऑर्डर भी दीजिए। लिखवाइए बेयरे को।'

ऑर्डर लिखवाने के उपरांत वे मुड़े उसकी ओर, 'हँसी क्यों तुम?'

'मजाक नहीं उड़ा रही मैं आपका।'

'फिर क्या उड़ा रही हो?'

'हँसी इसलिए आ गई कि मैं फ़िजूल आपसे उलझ रही हूँ। सच यही है, मैं चाहती हूँ मैं वही खाऊँ, जो आप मेरे लिए चुनें। यह भी जानती हूँ, आप इतना वक्त इसीलिए लगाते हैं क्योंकि मेरी पसंद की दस-पंद्रह चीजें गड्डमड्ड होने लगती हैं आपके सामने और आप सोचने लगते हैं, पिछली बार जो कुछ खा चुकी हूँ, इस बार उसे दोहराया न जाए। क्या मैं गलत हूँ?'

उनके चेहरे पर गहरा उच्छवास सँवला आया, 'नहीं! लेकिन उसने कभी तुम्हारी तरह नहीं सोचा...'

'ज़रूरी नहीं था कि सभी एक तरह से सोचें?' यह अचानक माँ बीच में कहाँ से आ गई, जो कभी नहीं आती।

वे लगभग उखड़ आए - 'पैरवी कर रही हो? ठीक है, मगर फिर अगले को भी किसी से यह अपेक्षा नहीं करनी चाहिए थी कि मैं उसी की भाँति सोचूँ, जो उसे पसंद है वही करूँ?'

उसे लगा, वह घुमड़न से उलझ नहीं सकती।

उसे अगले पल यह भी लगा, उसे उठना चाहिए और काउंटर पर जाकर अपनी शिकायत दर्ज करानी चाहिए कि ऐसे क्यों हो रहा है। हफ्ते भर बाद वह यहाँ आई है और यहाँ लगातार 'कम सेप्टेंबर' की वही पुरानी धुन बज रही है, जिसे वह पिछले हफ्ते सुन चुकी है? क्या उनके संकलन में कुछ और अच्छी धुनें नहीं हैं, जिन्हें बदल-बदलकर बजाया जा सके? ऑर्डर आने में अभी देर है। धुनें बदलवाना ज़रूरी है। वह उठकर काउंटर की ओर बढ़ चली। उसे मालूम है, उसके अचानक उठने और काउंटर की ओर

बढ़ने पर वह कोई सवाल नहीं करेंगे। ऐसा नहीं है कि वे सवाल नहीं करते हैं। सवाल करते हैं - कभी-कभी। उसे उनके तीन महीने पूर्व किए गए एक सवाल का जवाब अभी देना बाकी है। सवाल आसान नहीं है। न उसका जवाब इतनी आसानी से दिया जा सकता है। सवाल उसके होने से जुड़ा है। वह है, तो उसे उस 'होने' को महत्व देना ही पड़ेगा। जिम्मेदार व्यक्ति न अपने प्रति गैर-जिम्मेदार हो सकता है, न दूसरों के प्रति। यही उसकी अड़चन है, जिसने उसे ठिठका रखा है।

वह जानते हैं, वह उन्हें बहुत प्यार करती है। उन्होंने बहुत चिरौरी की थी माँ से - उन्हें सब कुछ छोड़कर जाना है, जाएँ। जैसा चाहेंगी, लिखकर दे देंगे। कोर्ट-कचहरी की फजीहत उन्हें पसंद नहीं। हाँ, बच्चे के बगैर जीना उनके लिए कठिन है। दुनिया में उसके आँखें खोलने के साथ ही उन्हें गहरे अहसास हो गया था कि वह उस आँखें मिचमिचाती नन्हीं जान के बिना नहीं रह सकते।

उन्होंने उसके जन्म के समय की अपनी भावनाओं को उससे आठ वर्ष की उम्र में बाँटा था कि उसके जन्म के समय उसे पहली बार देखने पर उसकी दादी ने उनसे कहा था, 'मुन्ना, छोरी हूबहू तेरे जैसी लगे है। अंगड़ाई तोड़ तू ऐसे ही आँखें मिचमिचा रहा था, जब पहली दफे सौर में मैंने तुझे दाई की गोद में देखा था।'

उसके आग्रह पर धुन बदल गई।

वातानुकूलित खुनक-भरे वातावरण में राजकपूर की 'श्री420' के गीत 'प्यार हुआ इकरार हुआ है, प्यार से फिर क्यों डरता है दिल...' की मद्धिम छूती-सहलाती-सिहराती धुन तैरने लगी।

बदली धुन ने उन्हें भी अपने साथ गुनगुनाने के लिए मजबूर कर दिया।

'तन्वी'

'बोलो, पा!'

'पुराने गाने पुराने मूल्यों की तरह हैं, नहीं?'

'पुराने गानों में बड़ा दम है। कविता हैं।' 'मूल्य' शब्द से उसने स्वयं को बचाना चाहा।

उन्हें भी समझ में आ गया - वह माहौल को कड़ुवाहट में डुबाने से बच रही है।

बेयरा ऑर्डर ले आया।

चीज बाल्स, जिन्हें वह पकौड़े कहते हैं, बड़ी प्लेट में सजे भाप छोड़ रहे हैं। 'कसाटा' अलबत्ता दो अलग-अलग प्लेटों में है। उन्होंने एक प्लेट उसकी और खिसकाई और चीज पकौड़ा उठाकर दाँतों से कुतरने लगे। उनके दाँतों में उम्र मरोड़े लेने लगी है। पिछले महीने निचले जबड़े की दाहिनी एक दाढ़ को निकलवाया है उन्होंने।

'अजीब चलन हो गया है। किसी भी रेस्तराँ में चले जाओ, अंग्रेजी की धुनें ही बजती हुई मिलेगी वहाँ।'

'रेस्तराँ का चलन ही वहाँ से आया है।'

'क्यों, हमारे यहाँ ढाबे और मिठाइयों की दुकानों नहीं हुआ करती हैं?'

'हुआ करती हैं, मगर उन्हें कभी संगीत से नहीं जोड़ा गया।'

'हो सकता है, वहाँ भी अंग्रेजी धुनें बजने लगी हों।' वह हँस पड़े।

'अगली बार हम लोग किसी हलवाई की दुकान पर मिलेंगे। उड़पी-सड़पी में तो बर्तनों की खनक ही सुनाई पड़ती है।' उसने उनकी हँसी में साथ दिया।

चीज बाल्स खासे कुरकुरे और स्वादिष्ट बने हैं। 'कसाटा' में बर्फ की अकड़ है। उसने चम्मच से अकड़ को खूँदा। खूँदने से निश्चित ही उसकी अकड़ में कुछ नरमी आएगी। आइसक्रीम को पिघलाकर खाना उसे पसंद नहीं। फिर तो रबड़ी का दूध ही पीना चाहिए। उसकी देखा-देखी उन्होंने भी आइसक्रीम को खूँदकर नरम करना शुरू कर दिया। अपनी अकड़ को आदमी कभी खूँदता है?

आइसक्रीम खाते हुए वह उन्हें देख रही है। गले की चमड़ी तेजी-से ढीली हो रही है। वे अब कसरत-वसरत भी नहीं करते। पहले नियमित कसरत किया करते थे। भुजाओं की सख्त मछलियों पर उससे मुक्के मरवाया करते थे। फिर एकाध साँस छोड़ मछली को चिपकाकर, उसे बाँह में भर चूमते हुए कहते थे - 'तुम्हारी मार के डर से उठकर मछलियाँ भाग गईं।'

माँ के संग वह सौतेले पिता के घर आ गई थी।

स्कूल जाने से पहले उन्होंने ही उसे घर का टेलीफ़ोन नंबर और पता रटवाया था। बच्चों को घर का पता और फ़ोन नंबर भली-भाँति याद होना चाहिए। मुसीबत में काम आता है। तीसरी साँझ माँ और सौतेले पिता के घर से बाहर जाते ही उसने फ़ोन का नंबर डायल कर उनसे बात की थी। वह जैसे उसके फ़ोन का इंतजार कर ही रहे थे। पिछले तीन दिनों से वे दफ्तर नहीं गए थे। बैठे पी रहे थे। उसकी आवाज़ सुनते ही वे प्रलाप करते हुए से बोले, 'तुम्हें लेने कल मैं डोबीवली आ रहा हूँ, तुम्हारे बिना मैं जी नहीं सकता, मेरी बच्ची!'

'आपने तो कहा था, पा! मैं आपकी बेटी नहीं हूँ।'

'यह तुमसे किसने कह दिया?'

'आपको झगड़े के बीच कहते हुए सुना था।'

'वह तो मैंने, तुम्हारी माँ को नीचा दिखाने की मंशा से कहा था। गुस्से में मैं अंधा हो जाता हूँ।'

'तब फिर मुझे माँ के साथ क्यों आने दिया?'

'माँ की जिद के आगे हार गया। यह भी सोचा, इतनी छोटी बच्ची माँ को छोड़कर कैसे रह पाएगी, रह सकती हो, बोलो?'

'नहीं रह सकती। माँ को भी मेरे साथ वापस ले आइए।'

'अब नहीं ला सकता। बाकायदा लिखा-पढ़ी हुई है। उस आदमी को अब वह नहीं छोड़ सकती। छोड़ना ही होता तो यहाँ से जाती ही क्यों?'

'पर पा, वह आदमी मुझे अच्छा नहीं लगता।'

'और उस आदमी को तुम?'

'मैं भी उसे अच्छी नहीं लगती।' वह सिसकने लगी थी।

'रोओ मत, मेरी बच्ची। बताओ, तुम्हारी माँ इस बात से परेशान नहीं है?'

'है, पा।'

'तब'

'मुझे अलग कमरे में सुलाने लगी है। मुझे अकेले डर लगता है, पा।'

'तेज़ होती सुबकियों के बीच उसने उन्हें सूचित किया था - घर की घंटी बजी है। उसका अनुमान है, माँ और सौतेले पिता घर आए हैं। मौका मिलते ही वह उन्हें दोबारा फ़ोन करेगी।'

तेरह वर्ष कैसे कट गए! कट नहीं गए, काटे गए। माँ को उसने कभी भनक नहीं लगने दी - पा और वह कब, कहाँ, कैसे मिलते हैं। माँ उसे प्रतिक्षण चेतावनियों से लादती रही - उनका मरा मुँह देखे, अगर कभी वह अपने पा से बात भी करे। उसे अचरज़ होता माँ के मुँह से ऐसी भाषा सुनकर। आखिर उनके भीतर घृणा के कितने कुएँ हैं। जो अब तलक उलीचते-उलीचते भी खाली नहीं हुए? उन्हें कभी यह भी खयाल नहीं आया कि किसी बच्चे के लिए कितना मुश्किल होता है, जो उसका पिता नहीं है, उसे पिता कह कर पुकारना! उस घर में रहते हुए उसने सौतेले पिता से कभी कोई बात नहीं की। पढ़ाई में

डूबी रहती दिन-रात। कक्षा में सदैव अव्वल आती। अव्वल आने ने ही रेलवे में नौकरी पाने में उसकी मदद की।

उन्हें छींकता हुआ पाकर वह अनायास चिंतित हो आई।

'क्या हुआ? ठंडा खाने का असर है?'

'ए.सी. कुछ बढ़ा हुआ नहीं लग रहा?'

'ठंडक जितनी थी, उतनी ही है, आइसक्रीम नुकसान कर गई। सर्दी आपको वैसे ही रहती है।'

चेहरे को लापरवाही से झटका उन्होंने, 'छोड़ो, छींक के डर से मैं आइसक्रीम खाना नहीं बंद कर सकता।'

'सुड़प-सुड़प' आवाज़ निकालते हुए वे आइसक्रीम खा ज़रूर रहे हैं, मगर उनकी निर्निमेष दृष्टि सामने पड़े परदों की सांधों से उलझी जाने कहाँ गुम हो गई है। ऐसी मुद्रा में वे जब भी होते हैं, उसे लगता है, उसके साथ होते हुए भी वे कहीं स्वयं से जा भिड़े हैं। अपनी भिड़ंत से बाहर आ अक्सर वे उसके लिए अपरिचित हो उठते हैं। तनिक हिंसक, ज़बकि वे हिंसक नहीं हैं। प्रकृति नहीं है उनकी हिंसक।

'तुम्हें मालूम है, तुम्हारी माँ का शक गलत नहीं है उसके बारे में।'

उसने चम्मच चाटते हुए पूछा, "समझी नहीं, किसके बारे में?"

'उसके बारे में जो जूते के कारखाने से घर रोज़ देरी से लौटता है। है एक मराठी लड़की उसकी जिंदगी में।'

चकित हो उठी। पा को कैसे मालूम? उसने तो कभी कुछ कहा नहीं। उन्होंने कभी कुछ पूछा भी नहीं। फिर? यानी माँ के बारे में सारी जानकारी है उन्हें! रास्ते अलग हो जाने के बावजूद जानकारी है तो उसे सच स्वीकार करना ही पड़ेगा। उन्हें मालूम है तो वह छिपा भी नहीं सकती। माँ की सिसकियाँ घर की दीवारें फाँद क्या उन तक दौड़ आती हैं?

'हाँ, इन दिनों माँ खासी परेशान रहती है।' उसने स्वीकारा।

उनके स्वर में विद्रूप उतरा, 'खामोशी से सह लेना चाहिए, जैसे मैं सह लिया करता था, जानते हुए कि वह चमड़ेवाले के साथ घूमती है।'

'अब पता चल रहा होगा उसे, अकेला कर दिया जाना कितना खतरनाक होता है।' उन्होंने आगे टिप्पणी की। जैसे उनके सामने वह नहीं, माँ बैठी हुई हो और उन्होंने अपने पंजों में बाघनख पहन लिए हों।

वह भेद नहीं पा रही है उनके चेहरों को। माँ की पीड़ा उनके नासूरों पर फाहा साबित हो रही है।

'उम्र में भी चमड़ेवाला उससे छह साल छोटा है।'

अब नहीं सहा जा रहा है। यह हिंसक व्यक्ति उसके 'पा' नहीं हैं। हों भी तो उसे स्वीकार नहीं। वहीं ठहरे हुए हैं, पुश्तैनी दुश्मन की तरह।

बेयरा तश्तरी में बिल ले आया।

लपककर उसने बिल उठा लिया। उनकी छीना-झपटी के बावजूद पहली बार बिल उसने चुकाया। कमाने के बावजूद उनका बिल चुकाना उसे अभिभावक का संरक्षण लगता रहा है, ज़बकि घर में वह माँ से अपने खर्च के लिए एक पैसा नहीं लेती, बल्कि हजार रुपया महीना उन्हें पकड़ा देती है। आठवीं कक्षा में आते ही उसने हिंदी पढ़ाने के दो ट्यूशन पकड़ लिए थे।

उसका बिल चुकाना उन्हें खिन्न कर गया।

स्वचालित दरवाजा खोलकर दोनों फुटपाथ पर आ गए।

'तुम घर रहने कब आ रही हो?' उनका सवाल उसकी चुप्पी को खरोचने लगा। बाहर उमस बढ़ गई है। उमस ने उसे अनमना कर दिया था। उमस उससे झेली नहीं जाती। सबसे बुरे लगते हैं उसे उमस भरे दिन लेकिन यह भी सच है कि पा के साथ वह जब भी होती है, उमस उसके पास फटकने से कतराती है। जाने आज़ क्यों उलटा हो रहा है। लग रहा है, उमस उनके साथ के बावजूद बढ़ रही है और निरंतर बढ़ती ही जा रही है, यहाँ तक कि साँसों में घुलती उसकी खारी आर्द्रता, साँसों को सीने तक पहुँचने नहीं दे रही है।

उसे मालूम है, साथ चलते हुए वह उसकी चुप्पी बरदाश्त नहीं कर पाते। किसी भी क्षण वे इस हिमाकत के लिए उसे टोक सकते हैं। उन्हें कुछ क्षण पहले किए गए अपने सवाल का ज़वाब भी चाहिए। सवाल नया नहीं है। तीन-चार महीने पुराना है। उन्होंने कहा था - ज़ल्दी तय कर लो कब तुम चमड़ेवाले के घर से अपना झोला-डंडा उठाओगी। अपनी वसीयत भी उन्होंने तैयार करवा ली है। दो कमरों वाले उनके सुंदर फ्लैट की एकमात्र मालकिन वह है, उनकी बच्ची - तन्वी गुप्ता। उनकी अंतिम इच्छा है, वह अपने घर लौट आए। बालिग हो चुकी है अब वह।

वह सोचती है - वह क्या है आखिर! अपने लिए, उनके लिए, माँ के लिए?

माँ ने कहा था, 'किसी भी हालत में मैं तन्वी को तुम्हारे पास नहीं छोड़ने वाली। जानती हूँ - तुम तन्वी के लिए तरसोगे, रोओगे, दीवारों से माथा सिर कूटोगे, कूटते रहो, जीवन पर्यंत कूटते रहो...'

एक साँझ उन्होंने उससे कहा था, 'जिस दिन तुम अपने घर लौट आओगी, उसके पास उसके आँसू पोंछने वाला कोई नहीं बचेगा।'

'बोलो तन्वी कब घर आ रही हो तुम?' उनका स्वर अधीर हो आया।

'किसके?' उसकी कनपटियों पर उमस पिघल रही है।

वे शायद मुस्कराए उसके सवाल पर, 'अपने और किसके।'

'वह तो आपका घर है, पा।'

वह चिढ़-से गए, 'ज़हाँ रह रही हो, वह किसका घर है?'

'माँ का।' कोई हिचक नहीं थी उसके स्वर में।

'पगली, वही तो मैं कह रहा हूँ, तुम अपने घर लौट आओ।'

'निर्णय ले लिया है, अपने घर ही लौटना चाहती हूँ, पा।'

'तब दिक्कत क्या है?'

'दिक्कत है, घर ढूँढ़ना।'

'क्या मतलब?' उनका स्वर गुर्राया।

'मतलब, अब मैं बालिग हो चुकी हूँ पा! और अपने घर में रहना चाहती हूँ। आपके पास ही वन-रूम-किचन किराए पर लेकर।'

उन्हें माटुंगा उतरना है और उसे डोंबीवली। शार्टकट आज़ाद मैदान ही है बोरीबंदर यानी शिवाजी टर्मिनल पहुँचने के लिए। उसने उनकी बाईं कोहनी धर ली और उन्हें सड़क क्रास करवाने लगी। उसे अचरज़ हुआ - उसकी पकड़ से उन्होंने अपनी कोहनी नहीं छुड़ाई। हठी बच्चे की भाँति घिसटते हुए ही सही, उसका अनुसरण करते हुए रोड क्रास करने लगे।

अबकी अगर लौटा तो

पद्मभूषण कुँवर नारायण

अबकी अगर लौटा तो
बृहत्तर लौटूँगा

चेहरे पर लगाये नोंकदार मूँछें नहीं
कमर में बाँधे लोहे की पूँछें नहीं
जगह दूँगा साथ चल रहे लोगों को
तरेर कर न देखूँगा उन्हें
भूखी शेर-आँखों से
अबकी अगर लौटा तो
मनुष्यतर लौटूँगा

घर से निकलते
सड़कों पर चलते
बसों पर चढ़ते
ट्रेनें पकड़ते
जगह बेजगह कुचला पड़ा
पिद्दी-सा जानवर नहीं
अगर बचा रहा तो
कृतज्ञतर लौटूँगा

अबकी अगर लौटा तो
हताहत नहीं
सबके हिताहित को सोचता
पूर्णतर लौटूँगा

अपने दस्तखत अपनी भाषा में करें

डॉ. वेद प्रताप वैदिक

भारत में भाषाई गुलामी इतनी गहरी पैठी हुई है कि अँग्रेजी को हटाने का आज कोई नाम तक नहीं लेता। आज देश के सभी राजनीतिक दल और नेता अँग्रेजी के गुलाम बने हुए हैं। अँग्रेजी के इस वर्चस्व के विरूद्ध देश को लंबी लड़ाई लड़नी है। यह सच्ची स्वाधीनता की लड़ाई होगी। इस लड़ाई के बहुत से आयाम है लेकिन मैंने अभी सिर्फ एक प्रारंभिक कदम सोचा है, जिसे हजारों लोग एकदम पसंद कर रहे हैं। भारत में जहां-जहां मेरे व्याख्यान होते हैं, वहाँ हजारों लोग हाथ खड़े करके मेरे इस विनम्र सुझाव का समर्थन करते हैं कि आज से वे अपने हस्ताक्षर या तो अपनी मातृभाषा में करेंगे या राष्ट्रभाषा में करेंगे।

मैंने अपने जीवन में अपने प्रामाणिक हस्ताक्षर सदा मेरी मातृभाषा हिंदी में किए हैं। मैं लगभग ८० देशों में गया हूँ, कई देशों में मैंने पढ़ा और पढ़ाया है तथा कई विदेशी भाषाएँ भी जानता हूँ, लेकिन मैंने अपने दस्तखत कभी अँग्रेजी में नहीं किए। आज तक मुझे देश या विदेश में किसी ने टोका नहीं कि आपने ये दस्तखत अँग्रेजी में क्यों नहीं किए? किसी भी व्यक्ति को दुनिया की कोई ताकत स्वभाषा में हस्ताक्षर करने से रोक नहीं सकती।

तो फिर आप क्यों अँग्रेजी में दस्तखत करते हैं? आपके दस्तखत आपकी पहचान हैं। आपसे बड़े आपके दस्तखत होते हैं। आप किसी बैंक में खुद जाएँ और उसके बाबू से ५०० रुपए माँगें तो आपको वह नहीं देगा, लेकिन आप एक चेक पर दस्तखत करें और उस पर ५००० रुपए लिख दें और अपने चपरासी को भेज दें तो वह उसे ५००० रुपए दे देगा। बताइए आप बड़े कि आपका दस्तखत बड़ा? आप तिरंगे ध्वज़ को प्रणाम क्यों करते हैं? आप ब्रिटेन के राष्ट्र-ध्वज 'यूनियन जैक' को प्रणाम क्यों नहीं करते? आप गाँधीजी को राष्ट्रपिता क्यों कहते हैं, विंस्टन चर्चिल को क्यों नहीं कहते? इसी तरह आप अँग्रेजी में दस्तखत क्यों करते हैं? अपनी मातृभाषा या राष्ट्रभाषा में क्यों नहीं करते?

मैंने संकल्प किया है कि मैं कम से कम दस करोड़ भारतीयों से उनके दस्तखत अँग्रेजी से बदलवाकर स्वभाषा में करवाऊँगा। मैं देश के सभी धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक संगठनों से आग्रह कर रहा हूँ कि वे इस स्वसंकल्प को लागू करें। मैं देश के करोड़ों बंधुओं से अनुरोध करता हूँ कि वे आज ही जाएँ और बैंकों, दफ्तरों और अपने दस्तावेजों में स्वभाषा में हस्ताक्षर करना शुरू कर दें। यह देश में होने वाली सांस्कृतिक क्रांति का सूत्रपात होगा।

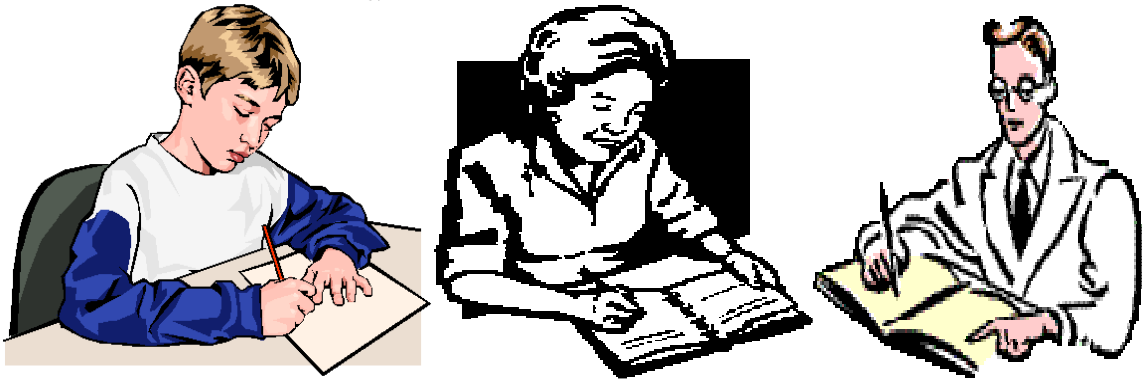

हैरान थी हिन्दी

डॉ. दिविक रमेश

हैरान थी हिन्दी
उतनी ही सकुचाई
लजाई
सहमी सहमी सी
खड़ी थी
साहब के कमरे के बाहर
इज़ाजत माँगती
माँगती दुआ
पी.ए. साहब की
तनिक निगाह की।
हैरान थी हिन्दी
आज भी आना पड़ा था उसे
लटक कर
खचाखच भरी
सरकारी बस के पायदान पर
सँभाल-सँभाल कर
अपनी इज्जत का आँचल।
हैरान थी हिन्दी
आज भी नहीं जा रहा था
किसी का ध्यान
उसकी जींस पर
चश्मे
और नए पर्स पर
मैंने पूछा
यह क्या माजरा है हिन्दी

सोचा था
इंग्लैंड
और फिर अमरीका से लौट कर
साहिब बन जाऊँगी
और अपने देश के
हर साहब से
आँखें मिला पाऊँगी।
क्या मालूम था
अमरीका रिटर्न होकर भी
बसों
और साहब के द्वार पर
बस धक्के ही खाऊँगी।
हिन्दी!
अब जाने भी दो
छोड़ो भी गम
इतनी बार बन कर उल्लू अब तो समझो
कि तुम जिनकी हो
उनकी तो रहोगी ही न
उनके मान से ही
क्यों नहीं कर लेती सब्र
यह क्या कम है
कि तुम्हारी बदौलत
कितनों ने ही
कर ली होगी सैर
इंग्लैंड और अमरीका तक की।
आप तो नहीं दिखे?
पहाड़ सा टूट पड़ा
यह प्रश्न
मेरी हीन भावना पर।
जिससे बचना चाहता था
वही हुआ।

संकट में था
कैसे बताता
कि न्यूयार्क क्या
मैं तो नागपुर तक नहीं बुलाया गया था
कैसे बताता
न्यौता तो क्या
मेरे नाम पर तो
सूची से पहले भी ज़िक्र तक नहीं होता
कैसे बताता
कि उबरने को अपनी झेंप से
अपनी इज्जत को
'नहीं मैं नहीं जा सका' की झूठी थेगली से
ढकता आ रहा हूँ।
अच्छा है
शायद समझ लिया है
मेरी अन्तरात्मा की झेंप को
हिन्दी ने।
आखिर उसकी
झेंप के सामने
मेरी झेंप तो
तिनका भी नहीं थी
बोली -
भाई,
समझते हो न मेरी पीर
हाँ बहिन!
यूँ ही थोड़े कहा है किसी ने
जा के पाँव न फटी बिवाई
वो क्या जाने पीर पराई
और लौट चले थे
हम भाई बहिन
बिना और अफसोस किए
अपने अपने
डेरे।

एक देर शाम

डॉ. अजय नावरिया

सूरज बुझने लगा था, जैसे दिये में तेल कम होने पर लौ मद्धिम हो जाती है। दूर पेड़ों के झुरमुट के पीछे सूरज उतरता चला था। उजाले की परछाई धीरे-धीरे फैलती जा रही थी। लेकिन उधर, उस तरफ़ पेड़ों के उस झुरमुट के पीछे सूरज अब भी होगा... नीचे गिरता हुआ ... अपनी गर्म राख में लिपट... वहाँ उजाला भी होगा, यहाँ से ज़्यादा...और उधर, उस पार, वहाँ तो यह उगता हुआ सूरज होगा और उस तरफ़ शायद मध्याह्न का।

'सच...सच भी, सच में, एक सा नहीं।' उसके मुँह से अनायास यह वाक्य छिटक कर पीछे हटते उजाले की सँवलाई परछाई पर गिरा था, जैसे पसीने की कोई बूँद टपक जाती है, माथे से होती हुई, नाक तक आने के बाद... टप्प...। 'सिर्फ़ दृष्टि का एक कोण है सच भी... यानी सिर्फ़ एक दृष्टिकोण... इतना टुच्चा होता है यह सच भी... तब झूठ।' उसे यह सोचकर अरुचि, वितृष्णा और विक्षोभ हुआ। फिर सही ग़लत क्या है?'

उसने दूर तक नज़रें दौड़ाई थीं। वहाँ दूर दो-चार ग्रामीण आकृतियाँ प्लास्टिक की पानी की बोतलें लिए उकड़ूँ बैठी, हाथ से मक्खियाँ उड़ा रही थीं। महानगर के कोलाहल से बाहर यह एक छोटा सा गाँव है। गाँव कहने को गाँव है, पर गाँव नहीं बचा है अब वहाँ। कहने को वह महानगर की परिभाषा में ही है, लेकिन परिधि में नहीं है, हाशिए पर पड़ा है। पास ही दूसरी तरफ़, राष्ट्रीय राजमार्ग है। इस तरफ़ नहर है, जिसमें महानगर की सभ्य कालोनियों का कूड़ा-कचरा और कई इलाकों से मल भी बहता आता है। 'ये भी कहाँ जाएँ, बेचारे!' उसकी निगाहें फिर मक्खी उड़ाती उन्हीं उकड़ूँ बैठी इन्सानी आकृतियों पर पड़ी थी। गाँव से बहुत सारे परिवार अब भी 'फ़ारिग' होने के लिए, नहर किनारे के खेतों पर आश्रित थे। उनके घर इतने छोटे हैं कि वहाँ मुश्किल से रहा ही जा सकता है। औरतों के बारे में सोचकर वह और उदास हो गया। 'ये कौन लोग हैं? क्या गरीब...? क्या बिना जात के हैं ये गरीब?' उसने माथे पर आई पसीने की चमचमाहट को साफ़ किया। हालाँकि यह पसीने का मौसम नहीं था। पसीना, पिछले महीने विदा हो चुका था, यह तो पसीना निकालने के महीने की शुरूआत थी। जुलाई का उफ़नता और अगस्त का सीझता मौसम समाप्त हो चुका था। दूर तक फ़सल की हरियाली दिखाई देने लगी थी।

'ये सब हमारे ही लोग हैं। कुछ बदला है कहीं...हम अब भी वैसे ही हैं... गाँव वैसा ही है, शहर वैसा ही है। गाँव के नए-नए चौधरी जब मर्जी अबे-तबे कर देते हैं...उनके साले बिलांद भर के लौंडे, हमारी बहन-बेटियों को दिखा-दिखाकर मूतते हैं...कहीं कुछ बदला है...क्या बदला है...घंटा बदला है बाबाजी का।' वह बड़बड़ाता ही चला गया था। उस सुनसान में कोई था नहीं, जो उसकी सुनता और सुनता भी तो क्या कहता।

'कहीं मैं सनक तो नहीं गया हूँ।' उसने ख़ुद से पूछा और फिर उधर ही निगाहें जमा दी, जहाँ सूरज की रोशनी, पानी के किसी सोते की तरह फूट रही थी। क्या सुबह और शाम एक से होते हैं? इस जगह पर बैठते हुए, उसने पहले ही आसपास देख लिया था कि दूर तक कोई न हो, जो बेवजह और बेमौके उसके अकेलेपर में खलल डाले। पर यह वाकई क्या एकांत था? इसमें सूरज की रोशनी थी, गाँव के हाजत निपटाते लोग थे, इसमें नहर थी, हरियाली थी और नौकरी से मिली घृणा थी। 'आह नौकरी।'

वह भुनभुनाया। 'कमबख्त यह शब्द ही घृणित है...कोई इज्जत नहीं...साले नौकर हैं...पर...पर नौकरशाह भी तो नौकर हैं...नहीं नहीं, यह सच नहीं है...यह सरासर झूठ है... वहीं सच और सच का दृष्टिकोण और झूठ की तरह उसका दुच्चा होना...नौकर और नौकरशाह अलग है, बिल्कुल अलग दो दुनियाओं की तरह...अमरीका और तीसरी दुनियाँ के देशों की तरह ...पुरोहित की तरह जो हम पर हुक्म चलाता है...हमारी हड्डियाँ चिंचोडता है भूखे भेडिए की तरह...हरामी मेरी नौकरी खा गया...नहीं...ऐसे नहीं।' वह झुँझलाहट में बड़बड़ाते हुए उठा खड़ा हुआ। उसने दोनों हथेलियों को मुँह के पास किया, जैसे किसी को पुकारने के लिए किया जाता है। फिर उसने छाती में लम्बी साँस भरने की कोशिश की, परंतु वह साँस भर नहीं पाया। वह पलभर रुका और गरदन झटक कर ख़ुद को हल्का करने की व्यर्थ कोशिश की। उसने गला खखारकर साफ़ किया, जो उसे भरा-भरा महसूस हो रहा था। उसने फिर हथेलियों को मुँह के पास किया और फेफेड़ों में साँस भरी, इस बार भर गई और वह जोर से चिल्लाया, '...कुत्ते...हरा... वह जब तक चिल्लाते-चिल्लाते पस्त नहीं हो गया। क्या वह जान गया था कि अब हमें रोने की बजाय चिल्लाना चाहिए? क्या वह जान गया था कि चीख, अत्याचारी के मन में दहशत भरती है? या फिर क्या वह बस ख़ुद को हल्का करने की कोशिश भर थी? वह निढ़ाल होकर चट्टानी ढाल पर पसर गया।

'पिता जी।' रोकते-रोकते भी उसकी आत्मा रो पड़ी थी। पर वह सुनसान और प्यासी चट्टान, उसके रोने की आवाज़ को चुपचाप पी गए थे।

उसके जेहन में, पिता की छवि चमकी थी। पिता एक सरकारी विद्यालय में चपरासी थे और अपने बेटे-बेटियों के आइ.ए.एस. बनने का सपना देखते थे। वह कहते थे कभी-कभी 'दिनकर, मेरा ख्वाब है रे पगले, कि तू एक दिन एजूकेशन डायरेक्टर बनकर ठाठ से, कुर्सी पर बैठे और घंटी बजाकर तू अपने चपरासी को बुलाए।' इससे बड़ा पद उनकी सोच से बाहर था। यह भावुकता के क्षण थे। तब उसने बारहवीं की परीक्षा पास की थी। अपने विद्यालय में सबसे ज़्यादा अंक उसी के आये थे। हिंदी और इतिहास में पचहत्तर प्रतिशत से ऊपर आये थे।

विद्यालय में जाट जाति के छात्रों का बाहुल्य था। अधिकतर अध्यापक भी इसी जाति के थे। दूसरे नम्बर पर ब्राह्मण अध्यापक थे। छात्रों में जाटों के अलावा सबसे ज़्यादा संख्या में चमार जाति के लोग थे। इक्के-दुक्के तो सभी जातियों के छात्र थे। ग्रामीण क्षेत्र के इस विद्यालय की हालत एक ग्राम व्यवस्था से अलग नहीं थी। 'भई तुझे बधाई हो सुमेर सिंह।' प्रधानाचार्य अमर सिंह टोकस ने दिनकर के पिता को बुझे मन से बधाई दी थी। 'इस बार फिर निकल गए, हरजनों के बालक आगे।' अधिकतर अध्यापकों की आवाज़ में अफ़सोस था।

उसके पिता सुनकर बाहर निकल आये थे, खुशी-खुशी। उन्होंने अध्यापकों के अफ़सोस पर ध्यान नहीं दिया था। 'सुमेर...।' अपने नाम की पुकार सुनकर वह रूके थे। पीछे से गणित के अध्यापक जयकिशन बाल्मीकि लंबे लंबे डग भरते आ रहे थे। 'बधाई हो भाई'। उन्होंने उन्हें गले लगाते हुए कहा। 'इस प्रिंसीपल के बहकावे में मत आना, अभी थोड़ी देर पहले कह रहा था कि ये हरिजनों के छोरे हर बार हमारे छोरों को पछाड़ रहे हैं और हम कुछ कर भी नहीं सकते, बोर्ड की परीक्षाएँ जो ठहरी, साईंस वालों को तो प्रेक्टिकल में नम्बर कम देकर हमने ठिकाने लगाया पर आर्ट्स वालों का क्या करें।' वह एक ही साँस में बता गए थे।

'क्या रमाकांत शर्मा जी भी वहाँ थे?' उसके पिता ने एक अन्य अध्यापक के बारे में पूछा था।

'थे क्यों ना...पर वे बेचारे क्या करते, जब सारे एक तरफा हो लिए, अकेले पड़ गए, पहले काफी कुछ हमारे पक्ष में बोले, पर शीशपाल के आगे कुछ बोल सके हैं।

'वह के कहवै था?

'कहवै के था, मजाक उड़ावै था, कहवै था कि ये भी थारी ही औलादें हैं...के फरक पड़े हैं।' सुनकर सब हो हो करके हँसने लगे थे। जयकिशन की बात सुनकर उसके पिता भीतर तक हिल गये थे। जयकिशन बाल्मीकि लौटे गए थे। पिता ने उसे बताया था बाद में। साथ ही कुछ कमज़ोर शब्दों में यह भी समझाया था कि यहाँ सब जातियाँ एक दूसरे को छोटा-बड़ा मानती हैं। बामन बामन तक से छूआछूत करता है, बाकी दूसरी जातियों की तो बात ही दूर है। उन्होंने यह भी समझाया था कि यह जाति कभी भारत से खत्म नहीं होगी, पर जातिवाद खत्म हो सकता है। जातिवाद खत्म होगा, शिक्षा और आर्थिक स्तर पर बराबरी हो, जैसे शरीर में निश्चित तापमान से ज्यादा बढ़ जाने को ही बुखार कहते हैं, वैसा ही बुखार यह जातिवाद है। निश्चित तापमान खतरनाक नहीं है, खराब है उस तापमान की सीमा से बढ़ना। इन कमज़ोर शब्दों ने धीरे-धीरे उसमें एक मज़बूत समझ भरी थी।

वह पिता की आई.ए.एस. अधिकारी बनने की ख्वाहिश पूरी नहीं कर सका था। बी.ए. करने के दौरान, मंडल कमीशन के मामले पर वह मीडिया की भूमिका देखकर दंग रह गया था। उसे अपने जैसे समाजों की चिंता हुई थी। मीडिया, आरक्षण विरोधी होकर, आरक्षण विरोधियों का ही साथ दे रहा था। अधिकतर लेखक, कलाकार, बुद्धिजीवी या तो इसमें नंगमनंग होकर कूद पड़े थे या फिर ख़ामोश हो गए थे। प्रगतिशीलता और जनवादिता की घज्जियाँ उड़ गई थीं।

दलितों का इससे कुछ लेना देना नहीं था। यह लड़ाई पिछड़े वर्गों की थी, परंतु भाई-बंदी की खुजली और शायद भविष्य के भय से आक्रांत, वे इसे अपनी लड़ाई मानकर जान दिए बैठे थे। उसे शुरू में यह सब समझ नहीं आया था। उसे जैन लड़के - लड़कियों का आरक्षण विरोध भी समझ नहीं आया था। पर धीरे-धीरे, परत-दर-परत यह उसके सामने खुलता चला गया था।

क्या वाकई आरक्षण की व्यवस्था गलत है? क्या वाकई यह प्रतिभाओं के साथ बलात्कार है? क्या वाकई यह केवल अयोग्यों का चुनाव बनकर रह गया है? उसके सामने कई सवाल फूटे थे। उसे पल भर को, सच में आरक्षण गलत लगा था। पर आख़िर वही आरक्षण, आर्थिक आधार पर कैसे जायज़ हो जाता है? हजारों समाजों के लाखों-करोड़ों लोगों की, क्या इस देश को बनाने में कोई भूमिका नहीं है? फिर क्यों उन्हें हर क्षेत्र में भागीदारी नहीं दी जानी चाहिए? जब सभ्य समाज, एक जन्म के अपाहिज के लिए, आसान जिंदगी जीने के लिए इतनी सहूलियतें देता है, तब ये समाज तो हजारों सालों से लहूलुहान है। पर फिर एक कलेक्टर के बेटे को आरक्षण क्यों मिलना चाहिए? क्या यह व्यवस्था, जाति को बढ़ा रही है? क्या जिन्हें आरक्षण नहीं मिलता, वे समाज इसे अपने हिस्से को हड़प होने के रूप में नहीं देखते हैं? क्या यह कोई नया ब्राह्मण वाद है... पीढ़ी दर पीढ़ी सुविधापूर्ण व्यवस्था...।' वह घिर गया था। 'सरकारी नौकरी, सरकारी होती है।' पिता ने उसके अखबार की दुनिया चुनने के फैसले पर अपनी असहमति जताई थी। 'वक्त अभी ऐसा भी नहीं बदला है।' फिर वह कुछ पल रुक कर बोले थे, 'तू नहीं तो कोई और करेगा मेरा सपना पूरा।' इतना कहकर उन्होंने उसके कंधे पर हाथ रखा था। इस हाथ का वज़न बहुत ज़्यादा लगा था उसे। क्या यह पिता के सपनों का बोझ था? उसके जेहन में अचानक आज इतने दिनों बाद सवाल चिल्लाया था।

वह चट्टान पर निस्पंद बैठा था, किसी बुत की तरह या किसी ऐसे दर्शक की तरह, जो डरावनी फिल्म देख रहा हो। दोपहर का दृश्य फिर एक बार पलट गया था। 'दिनकर, तुम्हें एडिटर साहब बुला

रहे हैं?' चपरासी की आवाज़ सुनकर उसने नजरें उठाकर चपरासी की तरफ देखा था, वहाँ उपहास था। 'साला चपरासी भी आप से तुम पर उतर आया।' वह भुनभुनाया था। 'यह भी जानता है कि मैं इसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। लोग उसी की कद्र करते हैं जो कुछ दे सकता हो या फिर बिगाड़ने की ताकत रखता हो। बाकी तो साले कीड़े हैं।' वह बड़बड़ाता रहा था। 'यहाँ ऊपर से नीचे तक ब्राह्मणों के गोत्र फन फैलाए बैठे हैं। संपादक के केबिन की तरफ बढ़ते हुए, उसके भारी मन से ये अल्फ़ाज गिर ही पड़े थे।

यह एक भारी, नक्काशीर दरवाज़ा था, जिस पर सुनहरी नेमप्लेट में परशुराम पुरोहित लिखा था। उसने दरवाज़ा खटखटाने से पहले पलटकर चारों तरफ देखा था। प्लास्टिक के वर्गाकार केबिनों में, कम्प्यूटर खोले ज़्यादातर चेहरे उसी की तरफ देख रहे थे। इन चेहरों में टकी ज़्यादातर आँखों में हिंसा थी, हरकत थी, हँसी थी, जैसे किसी भोजन जीमने बैठी पंगत में, बीचोंबीच, सुअर के अचानक घुस आने पर होती है।

'हाँ अंदर आओ। उसके अंदर झाँकते ही, पुरोहित की पैनी नज़र ने उसे छील दिया था। उसके होने को भी। 'अब क्या यही काम रह गया है, तुम्हें प्रूफ चेक करना सिखाऊँ क्या? पुरोहित चिल्लाया था। आज यह लगातार तीसरा दिन था, जब उसकी प्रूफ पर गलती दिखायी जा रही थी। यह तीसरा दिन था, उसे पड़ती लगातार फटकार का। यह तीसरा दिन था, इस निश्चय का कि वह और सतर्क होकर प्रूफ पढ़ेगा।

'सर, मैंने कई बार चेक किया था।' वह पहले वाली निर्भीकता खो गई थी। अब वह पुरोहित से डरने लगा था। रोज पड़ने वाली फटकार ने उसके हौसले तोड़ दिए थे धीरे-धीरे। क्या गुलाम बनने की शुरूआत इसी हौसले के टूट जाने से होती है। 'तो मैं झूठ बोल रहा हूँ... मुझे पढ़ना नहीं आता...तू मुझे सिखाएगा... मेरा इतना वक्त खराब कर दिया... एक तो तू, एक घंटे का काम पूरे दिन में करता है और उस पर मुझे झूठा बोलता है।' पुरोहित फट पड़ा था बुरी तरह। वह तीन दिनों में, आप से तू पर उतर आया था।

'जन जागरण' अखबार में काम करते हुए उसे सात महीने हो गये थे और इन पिछले दिनों के अलावा न उससे कभी ऐसा व्यवहार हुआ था और न उससे कोई गलती हुई थी। शायद होती भी होगी, तो कोई उसे पकड़ता नहीं था। एक दिन पुरोहित ने उसकी तैयार कापी पर एक शब्द लाल निशान के घेरे में लेकर उसे ठीक करने को कहा और वह हैरान रह गया कि वह तीन बार में उसे ठीक से नहीं लिख सका। वह चकरा गया था और शब्द हर बार एकदम नया और अलग लगने लगा था।

'दिनकर, उस दोगले को तुम्हारी कास्ट का पता चल गया है।' शशि शर्मा ने उसे बाद में बताया था।' 'यह पक्का भगवाधारी है।' शशि ने पुरोहित के केबिन की तरफ मुट्ठी तानते हुए कहा। 'यह प्रूफ की नहीं, उन रिपोर्ट का मामला है जो तुमने छापी थी प्रमुखता से...दलित उत्पीड़न वाली है।'

शशि शर्मा के कमज़ोर दिलासे ने उस कठिन वक्त में सम्बल दिया था। उसने रूमाल निकालकर अपनी गर्दन के पास से चिपचिपाहट को साफ़ किया था। 'नहीं शशि, गलती मुझसे हुई तो है ही...।' वह पल भर रुका था। 'नौकरशाह में, मैंने 'औ' की जगह 'ओ' लगा दिया था।'

'एक दो गलती किससे नहीं होती?' शशि शर्मा हाथ झटकता चला गया था। तीन दिनों में उसका दो सीटों पर ट्रांसफर किया था पुरोहित ने। यह सबसे ऊबाऊ और बेकार सीट थी। यहाँ सिर्फ़ बाहर से आई खबरों को दोबारा लिखना भर था, पर पुरोहित को इस पर भी संतोष नहीं था। वह उसे निकाल बाहर करना चाहता था। 'आगे ख्याल रखूँगा...।' यह कहते हुए, जैसे वह जमीन में धँस गया था। यह बिल्कुल ऐसी आवाज़ थी जो किसी गहरी खुदी कब्र से किसी के बोलने पर आती है। 'गेट

आउट... आज से तुम्हारी कोई ज़रूरत नहीं है यहाँ।' पुरोहित ने गुस्से में अपनी कुर्सी से उठते हुए कह ही दिया। उसकी ऊँगली का इशारा दरवाजे की तरफ था।

पुरोहित का ऐसा रौद्र रूप देखकर वह पल भर को सहम गया था। फिर जैसे उसे सब कुछ गवाँ देने का एहसास हुआ था और पल के इसी सौंवे हिस्से में, उसने फ़ाइल पुरोहित की मेज पर फेंक मारी थी। 'बैठ जा चुपचाप, नहीं तो जहाँ से निकला है वहीं गाड़ दूँगा तुझे।' वह पुरोहित से कहना चाहता था, पर कह नहीं सका था। पुरोहित उसकी गुस्से में निकलती भाप को देखकर चुपचाप कुर्सी पर बैठ गया। वह बचाव की मुद्रा में आ गया था। आख़िर वह बूढ़ा था। उसने दरवाज़ा खोला और बाहर निकल गया था।

'दिनकर, तुम्हें जमा देने थे साले के।' शशि शर्मा भी उसके पीछे-पीछे दफ्तर से बाहर चला गया था। दिनकर का मन भारी था, वह कुछ बोलने की हालत में नहीं था। 'अब कहाँ जा रहे हो?' शशि के स्वर में चिंता थी।

'वापस...घर।' दिनकर को बचपन में पढ़ी उस चूहे की कहानी याद आई थी, जिसे ऋषि ने अपने मंत्र से शेर से फिर चूहा बना दिया था। वह ऋषि के बहुरूपिये होने के क्षोभ से भर गया था। वह ऋषि दुष्ट था, चूहा नहीं।

शशि शर्मा ने चलते वक्त शाम सात बजे किंग्स सर्किल पर मिलने को कहा था। 'एक दिन हमारा होगा।' शशि ने दिनकर के कंधे थपथपाए थे। इन शब्दों में भरोसे से ज़्यादा दिलासा था।

शशि का जन्म कहने को बिहार के एक सुदूर पिछड़े गाँव में हुआ था, पर आधुनिकता, जिसका राजनीतिक रूप लोकतांत्रिकता है, उसमें कूट-कूट कर भरी थी। शशि के व्यवहार ने उसके कई भ्रमों को तोड़ा था।

'सात बजने में तो अभी लगभग सवा घंटा है।' दिनकर ने अपने मोबाइल में वक्त देखते हुए सोचा। 'मेट्रो ट्रेन से पैंतीस-चालीस मिनट में पहुँच जाऊँगा...अभी वक्त है।' बुदबुदाते हुए कुछ देर, वह औंधी पड़ी चट्टान पर लेट गया था।

वह थका-थका सा, घुटने पर हाथ रखकर उठ गया था। उसने पलटकर उस चट्टानी पत्थर की तरफ़ देखा, जिस पर वह इतनी देर से बैठा हुआ था। तेज बारिशों या किसी नमी के कारण उसके आसपास किनारों पर हरियाली फूट रही थी। 'अगर यह मुलायम मिट्टी न होती तो शायद यह हरियाली भी न होती।' फिर एकाएक उसे अपने प्यारे दोस्त शशि शर्मा की याद आई थी। 'मैं किसी से रूकूँगा नहीं अब।' उसने निश्चय किया।

जब वह किंग्स सर्किल के मेट्रो स्टेशन पर उतरा, तब साढ़े सात बजने को आये थे। शहर में मेट्रो के आने से शहर की पूरी व्यवस्था में बदलाव आ गया था। वरना किंग्स सर्किल से उसके गाँव पहुँचने में पहले ढाई घंटा लगता था। अब सिर्फ़ पैंतीस मिनट में, एकदम तरोताजा वह पहुँच जाता है। पहले तो वह पहुँचते- पहुँचते पसीने से लथपथ और बेदम हो जाता था। मेट्रो के चलते उसके गाँव की जमीनों के भाव आसमान छूने लगे हैं। लोगों के काम करने की क्षमता बढ़ गई है। क्या टेक्नोलॉजी ही हमारा उद्धार करेगी?

'एकदम पका दिया यार दिनकर।' शशि ने दिनकर को देखकर घड़ी दिखाते हुए कहा।

'मन नहीं था आने का।' दिनकर ने धम्म से कुर्सी पर बैठते हुए स्पष्टीकरण दिया।

'गम न कर...जो बीत गई सो बात गई।' शशि ने कंधे पर हाथ रखकर हिम्मत बँधाई।

सड़क पर धीरे-धीरे अँधेरा उतर चुका था। सड़क पर किनारे लगे बिजली के खंभों और आसपास की दुकानों से दूधिया रोशनी के सोते छूट रहे थे। दिनकर की आँखों में यह रोशनी चुभ रही थी। दिनकर ने मन ही मन बच्चनजी की इस कविता को दो-चार बार गुनगुनाया। उसने भीतर कुछ ऊर्जा

महसूस की थी। क्या वाकई ये शब्द उसके हारे हुए मन को ताकत दे रहे हैं? 'चलें कहीं?' शशि की आँखों में सवाल था और जवाब में दिनकर उठ गया था।

उन्होंने मुख्य सड़क से एक आटोरिक्शा किया, जो पाँच-पाँच रूपये में सेन्ट्रल मार्केट सवारियाँ पहुँचाता था। पाँच-सात मिनट में दोनों वहाँ पहुँच गए थे। वहाँ से उन्होंने मेजिक मोमेंट वोदका का एक अद्धा और एक लिम्का और एक सोड़ा खरीदा, साथ ही एक नमकीन का पैकेट भी। सारा सामान उन्होंने अपने-अपने बैग में डाल लिया।

दोनों पैदल चलते हुए फ्लाई ओवर के नीचे जा पहुँचे थे, जहाँ रेलवे लाइन थी और कभी-कभार मालगाड़ी ही वहाँ से गुज़रती थी। सिर्फ़ पचास कदम की दूरी पर दृश्य एकदम बदल गया था। यहाँ काफी अँधेरा था, पर दसियों लोग इधर-उधर खड़े थे। कुछ दो-चार के समूहों में और कुछ अकेले। उन्होंने वहीं वोदका, लिम्का और सोडा को आपस में मिला कर दो बोतलें तैयार कीं और बोदका की खाली बोलत झाड़ी में फेंक दी। उनके बोतल फेंकते ही दो पांच छह साल के लड़के उसे उठाने के लिए आपस में लड़ पड़े। वह पास मेज पर चलने वाली एक दुकान वाले आदमी के बच्चे थे शायद। वह उन्हें नाम से पुकार कर गालियाँ दे रहा था। उस मेज पर उबले अंडे, नमकीन और आमलेट बनाने की सामग्री थी। यह एक दुकाननुमा मेज थी।

'प्लास्टिक क्रांति' लिम्का और सोड़ा की प्लास्टिक बोतलें आपस में टकराते हुए उनके चेहरे पर 'चीयर्स' की चमक आई। दोनों ने इधर-उधर देखा और गट-गटकर काफी माल गटक गए। बोलत बंद कर वापस अपने-अपने बैग में डालकर निश्चिंत हो गए। दोनों का ध्यान इस ओर बराबर बना था कि कहीं पुलिस वाले न आ जायें। यहाँ इसका ख़तरा हमेशा बना रहता था। हालाँकि पुलिस वाले ज़्यादा कुछ नहीं करते थे, बस आदमी की हैसियत देखकर पैसे ऐंठ लेते थे। बाकी लोग भी शायद इधर-उधर, बार-बार यही देख रहे थे। कुछ बेखौफ थे, शायद उन्हें नशा चढ़ चुका था और वे 'जो होएगा देखा जाएगा' की परम अवस्था में जा चुके थे।

'यहाँ से चलो।' दिनकर ने शशि से कहा तो दोनों बढ़ चले। 'आजकल यहाँ छापा पड़ता है, वो 'मर्डर' हुआ था न उसके बाद से।

'पर साले हमारे जैसे लोग जाएँ तो जाएँ कहाँ। बार में पीने की औकात नहीं और घर में पी नहीं सकते।' शशि ने मन मसोसते हुए कहा।

वे दोनों रेल लाइन पार कर चुके थे कि तभी पीछे से पुलिस का छापा पड़ा। लोग इधर-उधर भागने लगे थे। कुछेक को पुलिस वालों ने पकड़ लिया था।

'अच्छा हुआ।' दिनकर ने साँस छोड़ी।

'कुछ नहीं साले ठुल्ले हैं, बीस पचास लेकर भाग जायेंगे।' शशि को हल्का सा नशा हो गया था।

फ्लाई ओवर के उस तरफ कई रिक्शे वाले खड़े थे। उन्होंने एक ऐसा रिक्शा चुना जो ऊपर से ढका हो और चलाने वाला जवान हो।

'रॉक व्यू होटल।' शशि ने जान बूझकर, सेन्ट्रल मार्केट के दूसरे कोने तक चलने के बारे में पूछा, जो लगभग डेढ़ किलोमीटर के फासले पर था।

'आइए साहेब।' रिक्शेवाला सीटा पर हाथ मारते हुए बोला।

'क्या लोगे?'

'जो मन आए दे देना साहेब।' रिक्शेवाला इस बार सीट पर एक बार और हाथ मारकर चढ़ गया। वह उन्हें नशे में समझ रहा था। वह तेज आदमी था। 'नहीं वे पहले तै कर।' शशि की आवाज़ में

कठोरता थी। 'दस रूपये।' रिक्शेवाले ने यह कठोरता भाँप ली थी। यह उसके अनुमान और समय से मेल नहीं खा रही थी।

'सात रूपये।' शशि ने फिर कड़े स्वर में पूछा। 'चलना है।' कहकर वह आगे को बढ़ने को हुआ।

'ठीक है बाबूजी आइए।' तीन रूपये घटते ही वे दोनों साहेब से बाबू जी हो गए।

दिनकर कहना चाहता था शशि से कि दस रूपये ठीक हैं, पर इस बीच यह सब तय हो गया था। 'यह लोग हमारे ही तो लोग हैं।' उसने सोचा था। 'क्या यह भी दलित ही नहीं होगा?'

रिक्शा चल पड़ा था और उन्होंने अपनी-अपनी बोतलें फिर थाम ली थी, इस बार खुले-आम। लोग देखते थे, पर या तो वे इसे समझ नहीं पाते थे या उनसे वास्ता नहीं रखना चाहते थे, वहाँ तो पुलिस थी बेइज्ज़ती का डर था और अब ये सब कुछ नहीं। लोग कार चलाते हुए शराब पीते रहते हैं। सब मार गरीब पर।' दिनकर घूँट भरते हुए सोच रहा था।

'वापस पुल पर चलो।' शशि ने रिक्शेवाले से कहा तो कभी वह शशि और कभी दिनकर के मुँह की तरफ़ टुकुर-टुकुर देखता रहा। शशि ने वहाँ तक का किराया उसके हाथ में रख दिया था। रिक्शा फिर मुड़ गया। रिक्शेवाले ने अब सारी स्थिति भाँप ली थी।

इस बार उसने भीड़ वाला रास्ता चुना, पर अब तक उनका डर भी भाग चुका था। बाज़ार अपने शबाब पर था, किसी खूबसूरत मॉडल की तरह, जो रैंप जाने को तैयार हुई हो। खूबसूरत और खूबसूरती से कहीं ज़्यादा आकर्षक पंजाबी लड़कियों और औरतों की भीड़ ने बाजार में एक जादू भर दिया था। 'ये भरे-भरे जिस्म वाली खूबसूरत लड़कियाँ न हों तो ये बाज़ार खाली हो जाय।' यह दिनकर की नशे में लहकती आवाज़ थी, किसी हिंसक पशु की गुर्राहट जैसी। इसमें प्रतिशोध भी झलक रहा था। मार्केट के आस-पास का सारा इलाका पाकिस्तान के बँटवारे के वक्त आये रिफ्यूजियों का था। जब वह आये थे, तो उनमें से ज़्यादातर फटेहाल और दाने-दाने को मोहताज़ थे, पर अपनी लगन, मेहनत और बुद्धि के बल पर उन्होंने जल्द ही अपना साम्राज्य शहर में खड़ा कर लिया था। शहर के खाने से लेकर नाच गाने तक पर पंजाबियों का प्रभाव था।

'ये सब बेईमान लोगों के महल हैं शशि। इनकी कोई नैतिकता नहीं... दिनकर की यह सोच प्रतिशोध के कारण बनी थी। वह प्रतिहिंसा में सुलग रहा था शराब के नशे ने इसे बढ़ावा दिया था।

शशि यह सब सुनकर हैरान था कि दिनकर एक पूरी कौम के बारे में ऐसी टिप्पणी कैसे कर सकता है। उसने हस्तक्षेप करते हुए कहा, 'दिनकर सब लोग ऐसे नहीं हैं। तुम्हें इनकी परेशानी भी देखनी चाहिए।' शशि ने दिनकर की बात काटी।

'अबे साले बिहारी।' सुनकर शशि और दिनकर की बातचीत का क्रम अचानक टूटा और जब तक वे दोनों समझ पाते, तब तक दो गोल-मटोल लड़कों में से एक ने रिक्शे वाले के थप्पड़ जमा दिया था। 'दिखता नहीं साले बिहारी, अभी बिहार से छूटकर आया है क्या?' दोनों में से वही थप्पड़ मारने वाला लड़का गुर्रा रहा था। रिक्शेवाले ने कान पकड़कर माफी माँग ली थी और आगे बढ़ गया था। शशि यह देखकर शर्मिंदगी महसूस कर रहा था।

'कहाँ के हो भय्या?' यह सवाल शशि का था और अतिरिक्त आत्मीयता से भरा था। क्या इस 'परदेस' में शशि को 'देस' से प्रीत हुई थी?

'इलाहाबाद के हैं सर।' रिक्शेवाले के सर में कोई तुर्शी न थी और कोई तल्खी भी नहीं।

क्या उसने अपनी नियति को स्वीकार कर लिया था? क्या वह घुटने टेक चुका था, इस नई दुनिया के सामने? या फिर यह दिखाई देने वाली रणनीति सच्चाई है? 'वह बिहार का नहीं है, पर यहाँ

सब लोग गरीबों, मजदूरों को 'बिहारी' कहकर बुलाते हैं। इसमें कितनी घृणा है...क्या यह गाली नहीं है, जैसे मुम्बई में किसी को भय्या कहना।' शशि के चेहरे पर अब भी अवसाद था। वह दिनकर की बात पर कोई टिप्पणी नहीं कर सका।

बाजार में शोर था, लेकिर रिक्शे पर चुप्पी चढ़ बैठी थी। वे चुपचाप अपने घूँट भरते रहे। उनके हाथ में कसैलेपन का स्वाद था और आँखें नमकीन हो चुकी थीं। कुछ देर के सन्नाटे के बाद, पुरोहित के लिए गालियाँ छूटने लगी, जैसे ज़मीन से पानी का सोता फूटता है, बुल बुल बुल... ल ।

'कितना पैसा हुआ भय्या?' शशि की आवाज़ में पहले जैसी हिंसा और हिकारत नहीं थी। रॉक व्यू की सीढ़ियाँ भी रोशनी से चमक रही थी। अंदर पूरा होटल दूधिया रोशनी से जगमगा रहा था। शशि उसी दूधिया सीढ़ी पर खड़ा था। रिक्शेवाला रिक्शे की गद्दी से उतर गया था और आगे हैंडिल पर कपड़ा मार रहा था। वह अपने दोनों ग्राहकों की असली औकात और पी गई बादशाहत के बीच कहीं झूल रहा था।

'चालीस रूपये।' आख़िर वह कह गया था।

'बस्स!' यह शशि के शब्द थे।

'रूक शशि...ये आज हमारे साथ खाना खाएगा।' दिनकर के शब्दों से तीनों ही चौंक गए थे। शशि की आँखों में आश्चर्य था। रिक्शेवाले के चेहरे पर से चमक चली गई थी, जो अभी कुछ देर पहले तक भी थी, शायद होटल की रोशनी की तेजी से । दिनकर भी ख़ुद पर हैरानी से हँस पड़ा था।

रिक्शेवाला भीतर जाने से मना कर रहा था, बार बार लगातार। उसकी आँखों में रिरियाहट थी और आवाज़ में कातरता। उसकी जीभ पर कामना थी और पसीने में डर। इस डर को भाँपते हुए दिनकर ने पहले उसके चालीस रूपये किराये के रख दिए। शशि इस बीच चुपचाप खड़ा रहा। इस बीच दो-चार खाली खड़े रिक्शे वाले भी वहाँ आ गए थे। उनके चेहरे पर अफ़सोस था, कौतुक था और उत्सुकता भी थी।

'चले काहे नहीं जाते, जब बाबूजी लोग कह रहे हैं?' रिक्शेवालों ने अपनी हसरतों के बीच से उसे हौंसला दिया।

यह सुनकर उसने रिक्शा होटल के सामने ताला लगाकर खड़ा कर दिया था। वे दोनों आगे बढ़ चुके थे। 'साहेब...।' उनके कान में रिक्शेवाले की आवाज पड़ी तो वे पलटे। दरवाजे पर दरबान ने उसे रोक दिया था। उन्होंने दरबान की तरफ़ छूटकर इस भाव से देखा कि 'यह हमारे साथ है' और दरबान ने उसे आने दिया था। वह अब उसे मना नहीं कर सकता था।

'यहाँ बैठो!' यह एक आलीशान वातानुकूलित होटल का हॉल था। रिक्शेवाला सकुचाता हुआ बैठ गया था। उसकी आँखों में आनंद ज़्यादा था या दुश्चिंताएँ, यह कहा नहीं जा सकता था। होटल के दूसरे ग्राहकों की आँखों में हिकारत, हिंसा और उपेक्षा थी। उनकी नज़र में वह अवांछित और गंदे कीड़े की तरह था। दिनकर ने दफ्तर में अपनी स्थिति का इससे विपर्यय किया। उनके सामने खाना लगने लगा था। रिक्शेवाला हुक्म के इंतज़ार में था ताकि जल्दी से वह भाग सके। शशि का इशारा पाकर वह शुरू हो गया। वह सहमा हुआ था, पर तेजी से खा रहा था। लोगों की खा जाने वाली नज़रों को वह अनदेखा कर रहा था। वेटर बार-बार आकर रिक्शेवाले से ही पूछ रहा था 'और कुछ लेंगे सर'- इसमें कुछ व्यंग्य भरा खेल था। क्या दिनकर अपना घाव सहला रहा था? उसकी आँखों में शांति और संतोष था, जैसे किसी सद्यप्रसवा माँ को अपने शिशु को दूध पिलाते हुए होता है या फिर किसी बाघ को, जिसने अपना शिकार खाया हो और अब पेड़ की छाँव में बैठकर जीभ से दाँत साफ़ कर रहा हो। दिनकर को कबीर का

वह दोहा याद आया था जिसमें 'बाजार के किसी से दोस्ती या दुश्मनी न करने' के भाव को साफ़ किया गया था। 'बाजार लिबरेट करता है।' सहसा उसके मन में यह हिंसक विचार उछला।

खाना हो चुका था। हाथ धोने के लिए, एक कटोरी में गुनगुना पानी और आधा टुकड़ा नींबू रख दिया था। रिक्शेवाले की आँख में जिज्ञासा थी। दोनों की देखदेख, उसने भी उसमें हाथ धो लिए थे, सौंफ और मिश्री भी उठा ली थी।

'यह वेटर को दे दो।' दिनकर ने दस रूपये का नोट रिक्शे वाले को पकड़ाया।

'थैंक्यू सर।' जब रिक्शेवाले ने वेटर को दस रूपये दिए तो उसने झुककर उसका अभिवादन किया। इस बार उसकी आँखों में व्यंग्य की जगह आदर आ बैठा था। रिक्शेवाले ने उन दोनों की तरफ़ देखा, जिसमें सवाल था कि 'क्या वह जा सकता है' और उनकी आँखों ने इसकी अनुमति दे दी थी। वह तुरंत दरवाजे पर पहुँच गया था। दरबान ने झुककर सलाम किया था। वह खी खी करते हुए बाहर उतर गया था। वह तेजी से रिक्शे पर चढ़ा और तेज-तेज पैडल मारते हुए, अमगता-अफनता, रिक्शे को ले उड़ा था। वह शायद सूरज के सातवें घोड़े पर सवार था।

'हो गई क्षतिपूर्ति?' शशि के सवाल ने दिनकर को दूर जाते रिक्शे से वापस खींचा।

'भरपाई।' दिनकर हँसा। 'यहाँ हमें कौन जानता है?...पर इसे सब जानते हैं।' उसने अँगूठे से तर्जनी के पोर को दो बार ऊपर-नीचे करते हुए छुआ, जिसका अर्थ था पैसा।

कमबख्त, सच भी सच में एक सा नहीं होता, वह नजरिए का एक टुच्चा सा खेल भर है।' दिनकर ने पतलून की दोनों खाली जेबें बाहर की तरफ पलट दी थी, जो बकरी के निचुड़े थनों की तरह लग रही थी.

दर्द

सरोज श्रीवास्तव 'स्वाति'

दर्द
अस्मिता है मेरी
किसी स्वीकार से मिटता नहीं
किसी पुचकार से बहलता नहीं
क्या कोई गलती है
कि 'स्वीकार' से मिट जाए
कोई पीड़ा है
कि 'पुचकार' से बहल जाए
यह तो हूँ 'मैं' और....
मेरा चिरंतन सत्य
मेरा अतीत, मेरा अस्तित्व....
मेरी अस्मिता का एक 'सजग साक्ष्य'
यह बताने को
कि अभी मैं ज़िन्दा हूँ
दर्द मुझमें है, मेरे साथ.

भूतनाथ

सुशांत सुप्रिय

रात के नौ-सवा नौ का वक़्त रहा होगा। आकाश बादलों से घिरा हुआ था। हल्की बूँदा-बाँदी हो रही थी। बादलों के बीच में से कभी-कभी आधा चाँद निकलता और झाँक कर फिर छिप जाता। हवा न ज़्यादा तेज़ बह रही थी, न कम। बीच-बीच में बिज़ली कड़कती और बादल गरज़ते। ऐसे समय में एक उदास और अकेला भूत किसी इलाक़े से गुज़र रहा था। वह पुराने ज़माने का भूत था। शायद गाँधीजी और सुभाष चंद्र बोस जैसे स्वतंत्रता-सेनानियों का समकालीन रहा होगा। उसके बाक़ी सभी साथी भूत की योनि से मुक्त हो गए थे। पर यदि ईश्वर था तो वह शायद इस भूत को भुला चुका था। एक ही इलाक़े में रहते-रहते यह भूत अपनी नियति से इतना तंग आ गया था कि वह ऐसे मौसम में भी कहीं जाने के लिए निकल पड़ा था।

सामने एक व्यक्ति सड़क पार कर रहा था। तभी पीछे से तेज़ गति से आ रही एक गाड़ी ने उसे टक्कर मार दी। शायद कोई पी कर गाड़ी चला रहा था। गाड़ी वाला टक्कर मार कर रफ़ूचक्कर हो गया। वह व्यक्ति सड़क पर लहुलुहान पड़ा था। आसपास से गुज़र रहे कुछ लोग वहाँ रुके। पर कोई भी उस व्यक्ति की मदद के लिए आगे नहीं आया। वह व्यक्ति दर्द से कराह रहा था पर लोग आपस में बातें कर रहे थे -

'ऐक्सिडेंट का मामला है।'

'पुलिस-केस बनता है।'

'देखा, गाड़ी वाला कैसे टक्कर मार कर भाग गया!'

'ये अमीर लोग अपने-आप को समझते क्या हैं'

'सारी गाड़ियों को ज़ला देना चाहिए।'

'कितने निर्दयी होते हैं लोग!'

'अरे, कोई इसकी मदद करो भाई, नहीं तो यह मर जाएगा ... '

यह सारा हादसा भूत की आँखों के सामने हुआ था। अपने ज़माने में भूत भी आम इंसान की तरह स्वार्थी और मतलबी था। पर जब से वह मर कर भूत बना था, उसके चरित्र में बदलाव आ गया था। उसमें परोपकार और दूसरों की मदद की भावना बलवती हो गई थी। ऐसा लगता था जैसे वह अपने जीवन-काल के दौरान किए गए कार्यों के लिए अब प्रायश्चित्त करना चाहता था।

जब घायल व्यक्ति की मदद के लिए कोई आगे नहीं आया तो भूत से रहा नहीं गया। यूँ भी कोई इंसान बिना मदद के किसी भूत के सामने तड़प-तड़प कर मर जाए और भूत कुछ न करे, यह भूत के भूतत्व की तौहीन होती । लिहाज़ा भूत ने मोर्चा सँभाला। उसने इंसान का रूप धर कर एक रिक्शा रुकवाया और घायल व्यक्ति को रिक्शे में लादकर सरकारी अस्पताल पहुँचाया।

भूत जब अस्पताल से बाहर आया तो रात के बारह बज़ रहे थे। वह थक कर चूर हो चुका था। बहुत अरसे से उसने किसी बुरी तरह घायल इंसान को इतने क़रीब से नहीं देखा था। उस लहुलुहान व्यक्ति को देखकर भूत की रूह काँप गई थी। थकान की वज़ह से उसने फ़ैसला किया कि आस-पास में ही रहने के लिए कोई इलाक़ा ढूँढा जाए। कुछ ही दूरी पर एक रिहाइशी इलाक़ा था। पास ही एक पार्क था जिसके किनारे एक बहुत पुराना वट-वृक्ष था। भूत को वह इलाक़ा पसंद आ गया। उसने सोचा

क्यों न कुछ दिन यहीं रहा जाए । शायद यहाँ का हवा-पानी रास आ जाए । यह सोचकर उस उदास और अकेले भूत ने उस वट-वृक्ष पर अपना डेरा ज़मा लिया ।

धीरे-धीरे भूत को वह इलाक़ा अच्छा लगने लगा । शाम में पार्क में बच्चे खेलने के लिए आते । एक दिन भूत से रहा नहीं गया । वह भी इंसान का रूप धरकर बच्चों के खेल में शामिल हो गया । धीरे-धीरे वह इलाक़े के बच्चों से घुल-मिल गया । वह उनके साथ कबड्डी, गिल्ली-डंडा, हॉकी, फ़ुटबॉल और क्रिकेट खेलने लगा । बच्चे उससे पूछते - 'अंकल, आपका नाम क्या है?' वह बोलता - 'भूतनाथ। मैं तुम्हारा भूतनाथ चाचा हूँ।'

धीरे-धीरे 'भूतनाथ चाचा' बच्चों के लाड़ले अंकल हो गए । वह बच्चों के साथ खेलते और उन्हें स्वतंत्रता-संग्राम की कहानियाँ सुनाते ।

पार्क के पास ही एक हैंड-पंप था । इलाक़े की महिलाएँ वहाँ सुबह-शाम घड़ों और बर्तनों में पानी भरने आती थीं । भूतनाथ अक्सर पानी भरने में बीमार महिलाओं और वृद्धाओं की मदद कर देता था ।धीरे-धीरे 'भूतनाथ भैया' इलाक़े के महिलाओं में भी लोकप्रिय हो गया । शाम को पार्क के किनारे पड़ी बेंचों पर इलाक़े के वृद्ध आ बैठते थे । इंसान अपने बुज़ुर्गों के साथ कैसा व्यवहार करते हैं, यह बात भूतनाथ से छिपी नहीं थी । वह अक्सर इन उपेक्षित वृद्धों के पास जा बैठता । उनकी बातें सुनता । उनका दुख-दर्द बाँटता । उन्हें गाँधीजी और सुभाषचंद्र बोस की कहानियाँ सुनाता । और अफ़सोस जताता कि इतनी क़ुर्बानियों के बाद प्राप्त की गई आज़ादी के महत्व को बाद की पीढ़ियों ने नहीं समझा। उन्होंने देश का क्या हाल कर दिया ।

धीरे-धीरे वह इलाक़े के बुज़ुर्गों का चहेता 'भूतनाथ बेटा' हो गया। ज़ब वह इलाक़े के बुज़ुर्गों के के पैर छूता और वे उसे 'जीते रहो बेटा' का आशीर्वाद देते तो वह हँस देता। शुरू-शुरू में भूतनाथ ने उन्हें बताया कि वह एक भूत था पर उन लोगों को लगा कि वह शायद उन से मज़ाक़ कर रहा है। किसी को उसकी बात पर यक़ीन ही नहीं हुआ ।

भूतनाथ जहाँ भी मौजूद होता वहाँ उसके चारों ओर गेंदे के फूलों की ख़ुशबू छाई रहती । लोग जब उससे इस बारे में पूछते तो वह भोलेपन से कहता - दरअसल मैं एक आम आदमी का भूत हूँ । यदि मैं किसी राजा, मंत्री या अमीर आदमी का भूत होता तो शायद मुझ में से गुलाब के फूलों की गंध आती। लोग यह सुनते तो इसे मज़ाक समझ कर खूब हँसते।

देखते-ही-देखते भूतनाथ पूरे इलाक़े के लोगों का चहेता बन गया । यदि बीच रात में किसी की तबीयत ख़राब हो जाती और उसे अस्पताल पहुँचाने की नौबत आ जाती तो भूतनाथ झट से वहाँ मौजूद हो जाता । यहाँ तक कि इलाक़े में किसी को किसी भी तरह की मदद चाहिए होती तो भूतनाथ वहाँ हाज़िर मिलता । कभी भूतनाथ स्थानीय लोगों के लड़ाई-झगड़े सुलझा कर उन में सुलह करवा रहा होता, कभी वह सुबह बच्चों को स्कूल-बस में चढ़ा रहा होता तो कभी वह किसी बीमार गृहिणी की रसोई में उस परिवार के सदस्यों के लिए खाना बना रहा होता । इलाक़े के लोग उसे अपना मानने लगे थे ।

कोई भी पर्व या त्योहार होता, भूतनाथ लोगों के बीच मिलता । रक्षा-बंधन पर वह महिलाओं से राखी बँधवा रहा होता । होली के अवसर पर वह रंगों में रंगा होता । दीवाली पर वह दीप ज़ला रहा होता और पटाखे चला रहा होता । और ईद पर वह लोगों से गले मिल रहा होता । भूतनाथ को लोगों से जितना प्यार मिलता उससे ज़्यादा प्यार वह लोगों में बाँटता ।

एक बार उस इलाक़े में बहुत चोरी-डकैतियाँ होने लगीं । जब एक रात वहाँ एक हत्या भी हो गई तो लोग सकते में आ गए। लोग पुलिस-वालों से शिकायत करते तो वे अपनी मज़बूरी गिना देते -

क्या करें? इतना बड़ा इलाक़ा है। पर पुलिस-स्टाफ़ इतना कम है । ऊपर से वी. आइ. पी. ड्यूटी, चुनाव-ड्यूटी ...

हार कर लोगों ने भूतनाथ से बात की । कुछ ही दिनों के भीतर भूतनाथ ने इलाक़े के सारे चोरों-बदमाशों को पकड़ कर पुलिस के हवाले कर दिया । एक भूत के लिए यह कौन-सा मुश्किल काम था । अब तो पुलिस-वाले भी भूतनाथ का लोहा मान गए । उन्होंने कहना शुरू कर दिया - भूतनाथ हमारा अपना आदमी है । हमारा ही मुखबिर है । वह हमारे लिए काम करता है । इस तरह भूतनाथ की लोकप्रियता बढ़ती चली गई ।

इलाक़े के लोग इलाक़े की समस्याओं के प्रति अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों की उदासीनता से बेहद क्षुब्ध रहते थे । सड़कें पाँच-पाँच सालों तक टूटी-फूटी रहतीं ।बिज़ली सुबह से शाम तक ग़ायब रहती । नगर निगम के नलों में एक बूँद पानी नहीं आता ।

हार कर लोगों ने भूतनाथ की शरण ली । भूतनाथ के लिए यह कौन-सा मुश्किल काम था । उसने चुटकी बजाई और पूरे इलाक़े में नई सड़कें बिछ गईं । उसके चुटकी बजाते ही इलाक़े में चौबीसों घंटे बिज़ली रहने लगी । उसकी चुटकी के असर से म्यूनिसिपैलिटी के नलों में से सारा दिन पानी आने लगा ।

इलाक़े के लोगों के हर्ष का ठिकाना नहीं रहा । भूतनाथ की लोकप्रियता आसमान छूने लगी। ख़बर फैलते ही अख़बार वाले और टी.वी. चैनल वाले भूतनाथ का इंटरव्यू लेने के लिए इलाक़े का चक्कर लगाने लगे। ज़ब मीडिया वाले भूतनाथ को ज़्यादा तंग करते तो वह ग़ायब हो जाता।

इस बीच कुछ लोगों को एक विचार सूझा । उन्होंने पेशकश की कि भूतनाथ जी को आगामी विधानसभा या लोकसभा के चुनावों में इलाक़े से उम्मीदवार घोषित किया जाए। उनका मानना था कि भूतनाथ जी एक सच्चे समाज़-सेवी हैं। इस पर किसी ने चुटकी ली कि अब जीवित लोगों से ज़्यादा 'मृतात्माएँ' ही इंसानों का दुख-दर्द समझ सकती हैं। इलाक़े में नारे लगने लगे - हमारा नेता कैसा हो, भूतनाथ भइया जैसा हो। इलाक़े के पढ़े-लिखे लोगों ने इस प्रस्ताव के समर्थन में हस्ताक्षर-अभियान चलाया, मानव-श्रृंखला बनाई और एक मशाल-जुलूस निकाला। पर भूतनाथ को जब लोगों की इस मुहिम का पता चला तो उसने विनम्रतापूर्वक लोगों की इस माँग को मानने से इंकार कर दिया । इसकी वज़ह क्या थी यह कोई नहीं जानता । कुछ लोगों ने दबी ज़बान से ज़रूर यह कहा कि शायद अब शिष्ट और शालीन लोग राजनीति में आने से कतराते हैं । कारण चाहे जो भी रहा हो, भूतनाथ के इंकार की वज़ह से राज्य और देश एक ऐतिहासिक मौक़े से वंचित हो गया जब कोई भूत पहली बार किसी विधानसभा या लोकसभा का सदस्य बन पाता ।

कुछ लोग क्रिकेट विश्व-कप में भारत की हार से इतने पीड़ित हुए कि उन्होंने इलाक़े में पोस्टर छपवा कर जगह-जगह चिपका दिए जिसमें बी.सी.सी.आई. से पुरजोर माँग की गई कि भूतनाथ को भारतीय क्रिकेट टीम में एक आलराउंडर के रूप में शामिल किया जाए । पार्क में इलाक़े के लड़कों के साथ क्रिकेट खेलते समय भूतनाथ न केवल चौके-छक्कों की झड़ी लगा देता था बल्कि वह अपनी सधी हुई गेंदबाज़ी से कई बार हैट-ट्रिक भी ले चुका था । यही नहीं, भूतनाथ ने हाकी और फ़ुटबाल के खेलों में भी झंडे गाड़ रखे थे । ज़ब वह गोलकीपर बन जाता तो गेंद की क्या मजाल थी कि वह गोल-पोस्ट के भीतर जा पाती । देखते-ही-देखते लोगों की यह माँग भी ज़ोर पकड़ने लगी कि कि भारतीय हॉकी और फ़ुटबाल के उद्धार के लिए भूतनाथ को राष्ट्रीय हॉकी और फ़ुटबाल टीमों में भी स्थान दिया जाए।

लोगों को विश्वास था कि ओलम्पिक खेलों में सौ करोड़ लोगों वाले देश भारत के लिए स्वर्ण-पदक का अकाल यदि कोई दूर कर सकता है तो वह भूतनाथ ही है । पर पता नहीं क्यों एक बार फिर भूतनाथ ने विनम्रतापूर्वक लोगों से अपील की कि वे इस संबंध में अपनी माँगें छोड़ दें । और इस तरह

राष्ट्र एक बार फिर उस ऐतिहासिक अवसर से वंचित हो गया जब कोई भूत किसी खेल की राष्ट्रीय टीम में शामिल हो कर अंतरराष्ट्रीय मंचों पर भारत को विज़य दिलाता।

इधर कुछ दिनों से भूतनाथ कुछ चिंतित रहने लगा था। हुआ यह था कि इलाक़े के कुछ लोगों ने पहले उससे उसकी जाति पूछ ली। फिर वे उससे उसका धर्म पूछने लगे। भूतनाथ चकरा गया। उसे मरे हुए पचास-साठ साल हो चुके थे। इस लंबे अरसे में वह अपनी जाति या धर्म के बारे में सब कुछ भूल चुका था। यूँ भी भूतों में कोई जाति-व्यवस्था तो होती नहीं। न भूतों में धर्म के नाम पर ही कोई विभाज़न होता है। इसलिए भूतनाथ को कभी जाति या धर्म के बिल्ले या पट्टे की ज़रूरत महसूस नहीं हुई। भूतनाथ ने अपने दिमाग़ पर बहुत ज़ोर डाला कि शायद कुछ याद आ जाए कि वह किस जाति या धर्म का था, पर निराशा ही हाथ लगी। दरअसल भूतनाथ तो इंसानियत का भूत था। यूँ भी इंसानों में अब इंसानियत कहाँ बची थी।

भूतनाथ को इलाक़े के लोग अब जाति और धर्म के धड़ों में बँटे नज़र आने लगे थे। उसे ले कर इलाक़े में तनाव हो गया। सवर्णों का यह कहना था कि भूतनाथ जैसा सर्वगुण-सम्पन्न व्यक्ति अवश्य ही किसी ऊँची जाति का होगा। दूसरी ओर इलाक़े के दलितों का यह दावा था कि भूतनाथ जैसी शख़्सियत का स्वामी कोई दलित ही हो सकता था। इस विवाद के चलते सवर्णों और दलितों में तनाव बना हुआ था। दोनों पक्षों पर भूतनाथ के समझाने का भी कोई असर नहीं हो रहा था। वे अपनी-अपनी बात पर अड़े हुए थे।

प्रशासन अभी इस समस्या से जूझ ही रहा था कि एक राजनीतिक दल ने यह घोषणा कर दी कि भूतनाथ गर्व से सारे हिंदू पर्व-त्योहार मनाता है। इसलिए वह एक देशभक्त हिंदू है, और वह आगामी चुनावों में उनकी राष्ट्रवादी पार्टी के लिए चुनाव-प्रचार करेगा। एक अन्य राजनीतिक दल ने इस बात पर कड़ा ऐतराज़ जताया। उस पार्टी का कहना था कि भूतनाथ तो शुरू से रोज़े रखता रहा है। वह हमेशा से ईद और मोहर्रम मनाता रहा है। इसलिए वह पक्का मुसलमान है। लिहाज़ा वह आगामी चुनावों में केवल उन्हीं की पार्टी के लिए चुनाव-प्रचार करेगा।

इससे पहले कि भूतनाथ कुछ समझ पाता, स्थिति बेक़ाबू हो गई। देखते-ही-देखते शरारती तत्वों की वज़ह से इलाक़े में दंगे शुरू हो गए जिनमें कई बेक़सूर मुसलमान और हिंदू मारे गए। प्रशासन ने इलाक़े में कर्फ़्यू लगा दिया और अर्द्ध-सैनिक बल गलियों में गश्त करने लगे।

भूतनाथ सन्न रह गया। वह तो लोगों का प्यार पाना चाहता था और बदले में लोगों में प्यार बाँटता था। उसके कारण लोग एक दूसरे के ख़ून के प्यासे हो जाएँगे, ऐसा तो उसने कभी सोचा ही नहीं था। उसका दिल खट्टा हो गया। दिल पर पत्थर रख कर उसने फ़ैसला किया कि उसका इस इलाक़े से चले जाना ही सब के हित में होगा।

और उसी रात भारी मन से भूतनाथ ने वह इलाक़ा छोड़ दिया। उदास और अकेला भूतनाथ एक बार फिर न मालूम कहाँ के लिए चल पड़ा। रात के बारह बज़ रहे थे। आकाश में चाँद और सितारे स्तब्ध खड़े थे। जाने से पहले भूतनाथ ने अंतिम बार उस इलाक़े की ओर मुड़ कर देखा। वहाँ उसे बहुत प्यार मिला था। पर वहीं उसका इंसानों से मोहभंग भी हुआ था। यदि भूत रोते होंगे तो उस रात भूतनाथ ज़रूर रोया होगा।

इलाक़े की एक युवती को भूतनाथ अच्छा लगने लगा था। वह भूतनाथ से बातें करके ख़ुश होती थी। भूतनाथ के चले जाने के बाद वह युवती गुमसुम, खोई-खोई और उदास रहने लगी। इलाक़े में फिर किसी ने उसे कभी हँसते हुए नहीं देखा।

कुछ दिनों के बाद इलाक़े में तनाव कम हो गया। धीरे-धीरे स्थिति सामान्य हो गई।

इलाक़े के कुछ हिंदुओं ने भूतनाथ को शिवजी का अवतार मान कर एक मंदिर बनाया और उस में भूतनाथ की प्रतिमा स्थापित कर के पूजा-अर्चना शुरू कर दी। इलाक़े के कुछ मुसलमानों ने भूतनाथ को एक पहुँचा हुआ मुस्लिम फ़क़ीर क़रार दिया। उन्होंने भूतनाथ की मज़ार बना ली जहाँ चादर चढ़ाई जाने लगी, और धागा बाँध कर मन्नत मानी जाने लगी।

लेकिन इलाक़े के ज़्यादातर लोगों का कहना है कि जब रात में आकाश बादलों से घिरा हुआ होता है, हल्की बूँदा-बाँदी हो रही होती है, बादलों के बीच में से कभी-कभी आधा चाँद निकलता है और झाँक कर छिप जाता है, बीच-बीच में बिज़ली कड़कती है और बादल गरज़ते हैं और हवा न ज़्यादा तेज बह रही होती है, न कम, तब उन्होंने उदास और अकेले भूतनाथ को कभी अस्पताल के पास, कभी पार्क के किनारे उगे वट-वृक्ष के पास भटकते हुए देखा है। जब लोग उसके पास जाते हैं तो वह ग़ायब हो जाता है। ज़्यादातर लोग अब मानते हैं कि भूतनाथ असल में भूत ही था। उनका अपना प्यारा भूत, जिसे उन्होंने अपनी ग़लतियों की वज़ह से हमेशा के लिए खो दिया।

और कुछ हुआ हो या न हुआ हो, भूतनाथ से मिलने के बाद इलाक़े के लोगों का भूतों के प्रति नज़रिया ज़रूर बदल गया है। भूत दयालु, परोपकारी, मददगार और सहृदय भी हो सकते हैं, ऐसा तो किसी ने पहले कभी सोचा भी नहीं था।

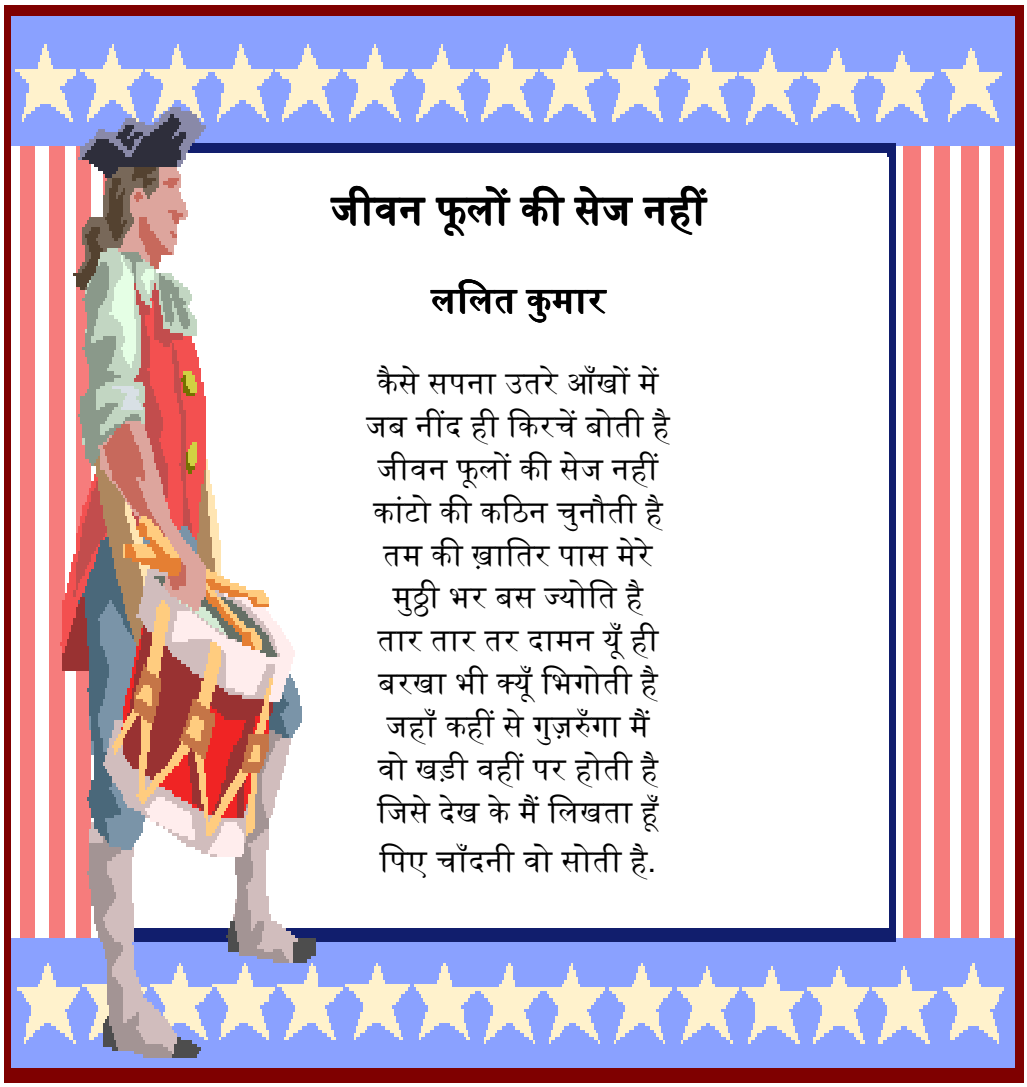

जीवन फूलों की सेज नहीं

ललित कुमार

कैसे सपना उतरे आँखों में
जब नींद ही किरचें बोती है
जीवन फूलों की सेज नहीं
कांटो की कठिन चुनौती है
तम की ख़ातिर पास मेरे
मुट्ठी भर बस ज्योति है
तार तार तर दामन यूँ ही
बरखा भी क्यूँ भिगोती है
जहाँ कहीं से गुज़रुँगा मैं
वो खड़ी वहीं पर होती है
जिसे देख के मैं लिखता हूँ
पिए चाँदनी वो सोती है.

फुटपाथ और पगडण्डी

सुरेन्द्र नाथ तिवारी

मैं अपनी नौकरी के तहत अल्बुकर्की आया हूँ । अल्बुकर्की, अमेरिका के न्यू मेक्सिको राज्य का बड़ा, शायद सबसे बड़ा, शहर है। इस होटल में मुझे अपने काम के तहत कोई पांच रातें बितानी हैं, आज़ बस दूसरी रात है। होटल बहुत ही आरामदेह है, पर घर की बात ही और है। नए बिस्तर पर नींद नहीं आती, चाहे वह कितना ही आरामदेह क्यों न हो।

आज़ अभी साढ़े तीन बजे ही नींद खुल गई; शायद इस लिए भी कि न्यू ज़र्सी में जहाँ मैं रहता हूँ, अभी सुबह के साढ़े पांच बज़ गए हैं, क्यों कि वहाँ का समय दो घंटे आगे है। मेरे जागने का आम तौर से यही समय है। पर यहाँ तो अभी साढ़े तीन ही बजे हैं । करवट बदलने और मानसिक उहापोह में मन में कल्पनाएँ चिड़ियों की तरह चूं चूं करने लगीं ।....यह चिड़िया इसलिए याद आती है कि मेरे घर के अहाते में सीडर के घने वृक्षों और उनसे लिपटी लताओं का जो घना जंगल है उसमें हजारों पक्षी सुबह यूं ही चूं चूं कर मुझे जगाते हैं । खैर, नींद खुली तो सोचा सुबह घूमने निकल जाऊँगा ।

होटल के विस्तृत परिसर में टहलने के लिए कोई एक मील लंबा फुटपाथ है। बाहर भी शहर में व्यस्त अट्टालिकाओं के नीचे फुटपाथ का अनंत विस्तार है, जिन पर टहला जा सकता है । पर मन पता नहीं क्यों फुट-पाथ पर टहलने से मना करता रहा। फुट-पाथ का कड़ा कंक्रीट याद आया। जूते चाहिए, बिना जूते के चल नहीं सकते। फिर याद आयी पगडंडी। ... पगडंडी पर जूतों की ज़रूरत नहीं है । फुटपाथ और पगडंडी...। चलने के दो अलग अलग रास्ते !

भोज़पुरी में पगडंडी को "खुरपेड़िया" कहते हैं । खुरपेड़िया का अर्थ है वह "पेड़ा" या रास्ता जो गाय के खुरों से बना हो। यह उस रास्ते को कहते हैं जो शाम को, गोधूलि बेला में, लौटती गायों के खुरों से बनता है। इसे मोटा-मोटी अमेरिका में डिअर-ट्रेल कह सकते हैं। आपने कभी सोचा है, हमारी संस्कृति गाय या "गो" के इर्द गिर्द घूमती है? गोधूलि, गोकुल, गोपाल, गोबर्धन, गोकर्ण, गोबर, गोमती, गोशाला, आदि आदि ।

यहाँ शहरों के फुटपाथों को देख कर वह "खुरपेड़िया", वह पगडण्डी, बहुत याद आती है ।

कुछ साल पहले जब गाँव गया था तो मधुमालती गाँव के महादेव के मंदिर में पूजा करने जाने का मन हुआ....आश्विन मास का पहला सोमवार... ब्रह्म-वेला में ही उठ कर जब जाने लगा तो किसी ने कहा, आप सड़क से हो कर जाइये, सीधा रास्ता है। पर मैंने ठान ली थी आज पगडंडी से जा कर देखता हूँ, उस टेढ़े-मेढ़े, पर परिचित रास्ते से, सीधी सड़क तो अभी बनी है, इस नये रास्ते से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है, कितना भी सीधा यह क्यों न हो, मुझे यह पगडण्डी अपनी लगती है, आत्मीय लगती है।

वह खलिहान वाली पगडण्डी जो बरगद के पेड़ के नीचे से होते हुए भड-भूंजे के चूल्हे के पास से हो कर अहीर-टोली के चौबे भैया के घर के पीछे जाती है, फिर सडक पार करके, भिखम राउत के बगल की गली से होकर, उनकी गोबी के खेत की आर (मेड़) से होती हुई, गन्ने के खेतों में खो जाती है, और जब प्रकट होती है तो मेरे अपने अरहर-तीसी के खेतों के बीच अंगडाईयाँ लेती हुई सिकरहना नदी के साथ चलने लगती है, महादेव के देवल तक जाने के लिए। अगर आप मेरे जैसे देहाती नहीं हैं, तो

शायद "देवल" का अर्थ नहीं जानते होंगें। सच मानिए, देवल कोई प्राकृत यानी देहाती शब्द नहीं है, शुद्ध संस्कृत शब्द है। देवल का मतलब है देवालय। जहाँ देवता का निवास हो, देव का आलय। मेरी मातृभाषा भोजपुरी में, गावों में, मंदिर कम, देवल ज़्यादा प्रचलित है। मन्दिर तो आप जैसे दिल्ली-बम्बई वाले कहते हैं।

खैर थोड़ी देर चलने के बाद दूसरे टोले के कोई पंडित जी आते दिखे, अभी थोड़ी दूर थे, कोहरा झीना झीना ही था, पर था तो सही । दूर की चीजें स्पष्ट दिखाई नहीं देती थीं । कनइल याने कर्णिकार के फूलों के ऊपर जो ओस सोई पड़ी थी, सुबह की ठंढी हवा से लगा जाग उठी थी और बरसने को आतुर थी, मैं ही सामने पड़ गया और फूलों पर सोई ओस की बूँदें झरझरा कर मेरे बालों को सिक्त कर गयी, पता नहीं क्यों, सर्दी सी लगने के बाद भी एक अजीब सुखद अनुभूति हुई, एक अपनापन सा लगा।

मैं धोती की खूँट से अपने चेहरे से ओस की बूँदें हटा ही रहा था कि पंडित जी सामने आ गये। अब मैं पहचान गया। अरे, ये तो शास्त्री रामरिख पधेया हैं। शुद्ध संस्कृत में कहें तो ये हैं शास्त्री रामर्षि उपाध्याय. छोटी काया, पर सुन्दर उन्नत ललाट पर त्रिपुण्ड चन्दन और सिर के पीछे धौत-केशों की लम्बी शिखा। दूर दराज़ तक अपने पाणिनि ज्ञान के लिए प्रसिद्ध. अगर थोड़ी बहुत अँग्रेजी आती तो अवश्य किसी अच्छी नौकरी में रहते। पर देश-भक्ति के आवेश में अँगरेजी नहीं सीखी, कहते रहे अगर भारत के प्रति भक्ति है तो हमें हर अँगरेजी चीज़ का बहिष्कार करना चाहिए। १९४६ में किसी अँग्रेज को भला-बुरा कह दिया, पकड़े गए, पर तब तक अँग्रेजों की हेकड़ी ख़त्म हो चुकी थी अतः ज़ल्दी ही छोड़ दिए गये। उसी झगड़े में वे रामेसर पांडे से उलझ पड़े थे, क्यों कि रामेसर पांडे अँग्रेज का पक्ष ले रहे थे। रामेसर पांडे के बाप उसी अँग्रेज की निलही कोठी में बड़े वफादार नौकर थे । जब अँग्रेज जाने लगे तो कोई सौ बीघा ज़मीन उनके नाम कर के चले गए। इसका असर यह हुआ कि रामेसर पांडे का परिवार आज़ादी के बाद रातोंरात नौकर से राजा बन गया और अनपढ़ रामेसर पांडे संस्कृत कॉलेज के ट्रस्टी बोर्ड के अध्यक्ष बन गये। तब शास्त्री जी ने अक्खड़ता में अनपढ़ ट्रस्टी वाले संस्कृत कॉलेज की नौकरी को धत्ता बताया और अपनी छोटी खेती में लग गये। गाँव के लोग उन्हें पधेया जी या पंडी जी (पंडित जी) ही कहते हैं ।

आपने समझा न कि पधेया का मतलब है उपाध्याय? भोजपुरी की प्राकृत में बेचारा संस्कृत "उपाध्याय", पधेया बन कर रह गया। असल में जब अँगरेजी सरकार के लोगों ने गाँव के अनपढ़ किसानों से नाम पूछा होगा तो लोगों ने वे नाम बताये होंगें जिससे वे पुकारते होंगें, जैसे पधेया, या शुकुल, या मिसिर। अगर यही सवाल किसी थोड़े पढ़े लिखे लोगों से किया गया होगा तो ज़बाब मिला होगा उपाध्याय, शुक्ल, मिश्र आदि। अँग्रेजों ने, या अँगरेजी में, जैसा जवाब मिला लिख दिया। यहाँ अमेरिका में भी मैंने ये 'प्राकृत' नाम देखे हैं। ओहायो राज्य के एक विधायक थे डा मिसिर। ये भी पूर्वी उत्तर प्रदेश के थे, यहाँ डाक्टर थे। बाद में विधायक बने। मैं भी कहाँ बहक गया।

हाँ, तो पंडित जी सामने थे। पगडंडी कोई फोर-लेन हाई-वे तो है नहीं कि हम दोनों उस पर चलते जाते। मैं अदब में नीचे उतर गया और झुक कर प्रणाम किया ।

उन्होंने कहा "खुश रह-अ", पर पहचाना नहीं। कभी कभार तो गाँव आता हूँ, उस पर सुबह की ओस-भरी धुंध और उस के ऊपर पंडित जी का मोटा चश्मा! सोचा चलता जाऊँ, ऐसे तो आते-जाते बहुत लोग पंडित जी को मिलते होंगे और प्रणाम करके सभी अपने रास्ते चलते रहते होंगें। पर लगता है कि चूँकि उन्होंने पहचाना नहीं, अतः वे रुक गए ।

"के ह -अ?।" उनका प्रश्न था। यानि "कौन है?"
मैंने उत्तर दिया ।
"आरे बाबू, बहुत दिन का बाद आइल बाड़-अ ?" उन्होंने स्नेह से कहा ।

मैंने जब से होश सम्भाला है, मुझे याद है वे सदा मुझे स्नेह देते रहे हैं, शायद इसलिए कि मेरे पिता जी उनके गुरुभाई थे और इन्हीं की तरह अक्खड़, और मैं उनके संस्कृत ज्ञान से बचपन से अभिभूत रहा हूँ, अतः इस पारस्परिक स्नेह-श्रद्धा के कारण हम बहुत देर बतियाते रहे। उनका एक नाती, श्यामल, अभी अभी आई.पी. एस. में चुना गया है, यह पंडित जी के लिए ही नहीं मेरे पूरे गाँव के लिए बड़े गर्व की बात थी । पंडित जी ने बड़े गर्व से उसके बारे में बताया ।
मैंने पूछा "श्यामल के ट्रेनिंग कब शुरू होई ?" और ऐसे ही कितने प्रश्न और उनके गर्व भरे उत्तर। उनके दामाद जी ने शुरुआत तो सरकारी बैंक की क्लर्की से की थी पर कोई दस वर्ष बाद ही मैनेजर हो गए थे; बेटी शैलजा को भी हाई-स्कूल तक पढ़ाया था, फर्स्ट डिविज़न भी थी, पर विवाह पढ़ाई से ज़्यादा ज़रूरी होता है गाँव में। शैलजा आगे पढ़ी तो नहीं, पर परिवार में शिक्षा की परम्परा थी, इसी संस्कार के कारण उसने अपने मायके की सरस्वती-साधना की परम्परा को ध्यान रख बच्चों की शिक्षा को प्रधानता दी थी। और भारत के कई शहरों, जहाँ-जहाँ पोस्टिंग हुयी, बच्चे साथ साथ गए और उनका बड़ा सुन्दर विकास हुआ। पति की आन्ध्र प्रदेश में कई पोस्टिंग हुयी। एक पोस्टिंग के दौरान, वारंगल शहर की सुन्दरता और काकातेयी, भद्रकाली, तथा रामप्पा मंदिरों के स्थापत्य ने शैलजा की किशोरी बेटी मीरा को बहुत प्रभावित किया और वह इंजीनियरिंग की छात्रा बन गयी। मुम्बई के आई आई टी से सिविल इंजीनियरिंग की पढाई पूरी कर इ टी एच जुरिच, नेदरलैंड्स में वह स्थापत्य (आर्किटेक्चर) में मास्टर्स या पी. एच.डी कर रही है। इ टी एच जुरिच में हम जैसे गँवारों के लिए दाखिला असंभव सा है. कहाँ स्थापत्य का यह विश्व-प्रसिद्ध विश्वविद्यालय और कहाँ एक छोटे गाँव की किशोरी बेटी। मुझे जब यह पता लगा था तो मेरा सर गर्व से ऊँचा हो गया था। उसके भाई श्यामल के आई. पी. एस. में आने की बजाय मुझे ज्यादा गर्व हुआ था जब मीरा इ टी एच में गयी थी। पर आम भारतीय, वह भी गाँव के लोगों को इ टी एच जुरिच का पता भी नहीं है, उनके लिए तो सरकारी आदमी चाहे वह चपरासी ही क्यों नहीं हो, ज़्यादा रोबदार होता है, और यहाँ तो आई. पी. एस. की बात हो रही है।

पंडित जी शायमल की बातें करते रहे, मैं कभी मीरा की उपलब्धियों और कभी इस परिवार की गौरवशाली पांडित्य-परम्परा के बारे में सोचता रहा. किसी ने कहा था कि मीरा चार भाषाएँ हिंदी, अँग्रेजी, ज़र्मन तथा तेलुगु तो फर्राटे से बोलती है, इसके अतिरिक्त संस्कृत तो उसकी पारिवारिक परम्परा रही है। नानाजी के साथ उसने "शिव-तांडव" से "शाकुन्तलम्" तक की यात्रा की है और भोजपुरी तो मातृभाषा है ही. मैं सोचता रहा की अगर मीरा चाहे तो वह मीरा कुमार, या मीरा शंकर बन सकती है। लोक सभा की अध्यक्षा, या अमेरिका में भारत की राजदूत या फिर मीरा नायर.....!

मीरा पर बात आयी तो कहने लगे "बेटा, मीरा है तो बड़ी तेज, और उसको छात्र-वृत्ति (स्कालरशिप) भी मिली है कॉलेज़ से, पर रहने-खाने और टिकट आदि का खर्चा तो अपने ही देना है न। शैलजा ने सारा पैसा बेटे को दिल्ली रख कर पढ़ाने में खर्च कर दिया, जो कुछ बचा है वह मीरा के विवाह के लिए रखा है। अतः सोचा मैं भी थोड़ी मददकर दूँ, सो पटहेरवा सरेह का ढाई बीघा खेत परती पड़ा था, अब मुझसे खेती होती नहीं, बटाई वाले भी चोरी करते हैं....अतः उसे बेच दिया, और वही पैसा दामाद जी को दे दिया। जो थोडा बहुत खेत बटाई पर है, उससे हम दोनों का गुजर चल

जाता है। अब हम कितने दोनों के मेहमान हैं, सब तो उन्हीं लोगों का है, आज या कल....लेकिन मैंने शैलजा और दामाद जी को साफ़ कह दिया कि यह केवल मीरा कि पढ़ाई और उसके विवाह के लिए है, विवाह भी तो जरूरी है न? लड़की कितनी भी पढ़ जाय, पर विवाह बेटियों के लिए बहुत जरूरी है।" ...

इसी क्रम में मुझे अपने गाँव वाले भाई की बातें याद आयीं जो कहते हैं की पंडित जी की नतिनी के बारे में कई अफवाहें हैं भैया.... वह किसी अँग्रेज से फँस गयी है जो बम्बई में उसका प्रोफ़ेसर था आदि आदि. गाँव में हर गोरा आदमी चाहे वह ज़र्मन, फ्रेंच कुछ भी हो...अँग्रेज होता है! वैसे ही जैसे ज़्यादातर उत्तर भारतीयों के लिए हर दक्षिण भारतीय "मद्रासी" लगता है, चाहे वह विज़यनगरम या बंगलौर का हो, या कोचीन या कोयंबटूर का, सब मद्रासी ही हैं. इतने दिनों अमेरिका में रहने के बाद किसी भारतीय कन्या का किसी गोरे लड़के से विवाह को मैंने मन ही मन स्वीकार कर लिया है। मैंने श्यामल या मीरा को देखा नहीं है. पण्डित जी के दामाद को भी नहीं देखा है. शैलजा को बहुत दिनों कोई ३०-३५ बर्षों पूर्व देखा था. बड़ी नेक, सुन्दर नाक-नक्श वाली कन्या थी पंडित जी की। उनकी बिटिया भी सुन्दर होगी....सरस्वती-साधिका तो वह है ही!

मैं कई बातें सुन-गुन रहा हूँ. विवाह कि इतनी ज़रूरत बेटियों के लिए ही क्यों और धीरे धीरे पंडित जी यह खेती सचमुच बेच देंगें? क्या यहाँ से सचमुच पंडित जी का नामोनिशान मिट जायेगा? आज से पचीस वर्ष बाद मीरा दुनिया के किस देश में रहेगी, श्यामल कहाँ होंगें, शायद गाँव में पंडित जी का कोई नहीं रहेगा! उनका पाणिनि-ज्ञान, जिसके बारे में गाँव वाले बड़े गर्व से अपने को "पंडित जी के गाँव आला" कहते थे, क्या सचमुच लोप हो जायेगा? सोचता हूँ, गाँव क्या, भारत में भी, कुछ वर्षों बाद, पाणिनि को जानने वाले नहीं मिलेंगें। सोचता हूँ यह विडंबना हम सबों की है. मेरी भी तो यही हालत है. कब तक गाँव मेरा अपना है. दस वर्षों बाद मुझे खुद भी इस गाँव में कौन जानेगा? अभी ही धीरे धीरे लोगों ने मुझे पहचानना बंद कर दिया है. थोड़े ही लोग तो पहचान पाते हैं. बच्चे-किशोर मुझे नहीं जानते, कुछ युवा लोग थोडा मेरे बारे में जानते हैं, पर मुझे नहीं जानते, और जो मुझे जानने वाले वृद्ध हैं उनकी आँखें कमजोर हो गयीं हैं. मैं अमेरिका में कई भारतीय परिवारों को जानता हूँ जिनकी बहुत खेती थी भारत में....सब छोड़ कर यहाँ बस गए हैं...दशकों हो गए, देखने तक नहीं जाते. पंद्रह-बीस वर्षों पूर्व वे अपने गाँव के किशोरों के आदर्श थे...अब उन्हें शायद ही कोई जानता है !

खैर...पंडित जी खड़े खड़े थकने लगे थे, चारु-वृत्त तरूण-अरुण सूर्य भी ओस की गहरी धुंध से झाँकने लगे थे। मैंने पंडित जी से विदा ली "साँझ के दुआरा आएब, अब च-ल-तानी, ना- त- अ देर हो जाई"....यानि मैं शाम को आपके दरवाजे पर आऊँगा (तब और भी बातें होंगीं), अब चलता हूँ नहीं तो देर हो जायेगी"। पथ में ऐसे ही स्नेहिल तरुवरों से मिलकर "विरल: स कोऽपि विटपी" वाला जगन्नाथ का श्लोक बहुत याद आता है!

मैं अहिरटोली पहुँच कर चौबे - भैया के दरवाजे पर गया. चौबे-भैया, सबके भैया हैं...बड़े-बूढ़े-बच्चे सबके.... सलाम-दुआ हुयी...चौबे भैया ने पूछा ...केने के जात्रा बा ? याने ....किधर की यात्रा है? बताने पर वे कहने लगे कि मैं बहुत दिन बाद आया हूँ और देवल को जाने वाली खुरपेडिया बदलती रहती है क्योंकि सिकरहना नदी जब उफनती है तो खुरपेडिया क्या, सड़कों को भी उखाड़ फेंकती है। अत: मैं उनके दस साल के बेटे प्रकाश को साथ लेता जाऊँ। वह खेतों के बीच बल-खाती हुयी खुरपेडिया पर मेरा मार्ग दर्शन करेगा। प्रकाश अपने सेल फ़ोन पर अपने मामा से गप्प हाँक रहा था। मैं सोच रहा था...हाँ हाँ, मेरे गाँव में भी विकास तो हुआ ही है....दस साल को छोरा सुबह सात बजे अपने बस-

ड्राईवर मामा को कोई १५० किलोमीटर दूर हाजीपुर फ़ोन कर जगाता है "मामा आज शाम को केले का एक घौद ज़रूर लेते आईयेगा जब बस इधर ले आईयेगा, आज़ माँ का व्रत है।" मामा पटना से रक्सौल वाली बस चलाते हैं. हाजीपुर के छोटे केले बड़े प्रसिद्ध हैं अतः रोज़ ही प्रकाश के घर केले आते हैं. पटना-रक्सौल सड़क पर ही तो है गाँव। गाँव की औरतें चौबाईन की बड़ी प्रशंसा करती हैं "भाई होखे तो अईसा ....केरा से घर भरा रहता है।" केरा मतलब "केला"।

अपने पिता के कहने पर प्रकाश मेरे साथ हो लिया। जब हम चलने लगे तो इस बात का अंदेशा तो था कि मेरी जानी-पहचानी पगडण्डी ने अपना रास्ता बदल दिया होगा, पर हम जैसे जैसे आगे बढ़ते गए, मुझे लगा कि कुछ नहीं बदला है। वही बड़े बड़े घने गन्नों के खेतों में छिपती हुई, सरसों-तीसी-गेहूँ के खेतों की मेड़ों पर रेंगती.....वही "सिरिसिया" सरेह .....कुछ भी तो नहीं बदला है। मैं चला जा रहा हूँ और वह ठीक "स्पाट" याद करने की कोशिश कर रहा हूँ जहाँ हम कुछ किशोर जब गन्ना काटने से थक जाते थे और सूरज़ सर पर चढ़ कर अपनी गर्म आँखें दिखाने लगता था, बैठ कर सुस्ताते और गन्ने की छाया में गन्ने का 'जलपान' करते। या जहाँ मसुरी (मसूर-दाल) को काट कर "बोझा" बाँधने के बाद, उस बोझ को लेकर खलिहान का डेढ़ मील का रास्ता तय करने के पहले, बैठ कर तोलते ताकि ज़्यादा भारी "बोझा" धरम महतो के लिए छोड़ दें....वे हम सबों में सबसे ज़्यादा मज़बूत थे। फिर सर पर "मुरेठा" यानि पगड़ी, बाँध, बोझे को उठाकर खलिहान की तरफ चल पड़ते.....

.....हाँ हाँ, इसी पगडण्डी से, वही "डण्डेर" यानि मेड़, जिस पर "बोझा" के बोझ से हम बहुत सँभल कर चलते कि कहीं गिर न जायें.....चुहल में एक-दूसरे का बोझा गिरा देते....खूब झगडा होता....और इसके पहले कि पीछे से आते हुए कोई बुजुर्ग हमें देख लें और डाँटें, हम झटपट सुलह कर एक-दूसरे की मदद से बोझा उठा कर खलिहान की तरफ चल पड़ते ...हँसते, मुस्कराते. हाँ हाँ ...यही वह स्पाट है! "डण्डेर" भी नहीं टूटी है.....सिकरहना की कई साल की बाढ़ भी इसे नहीं डिगा पायी है, ४०-४५ वर्षों बाद भी।

मैं थोड़ी देर रूकता हूँ। अपनी स्नेहिल यादों में डूब, उस "डण्डेर" की मिट्टी को छूने के लिए ....थोड़ी देर वहाँ बैठने का मन होता है। भोज़पुरी का एक गीत याद आता है "निमिया तरे डोली रख दे कहरवा, देखीं तनी गवुआं के लो-ग हे-अ "।

प्रकाश थोडा आगे बढ़ गया था, मुड़कर मुझे देखता है, पूछता है "का भईल चाचा ?"

"कुछो ना हो" मैं कहता हूँ "तनी बैठ-अ, थाक गईल बानी" मैं झूठ बोल जाता हूँ। मुझे कोई थकान नहीं है, बल्कि एक नयी उर्जा का अनुभव होता है। वह हँसता है "अबहीयें थाक गईलीं? अबहीं त देवल लम्हारा बा।" यानि आप अभी थक गए, देवल तो अभी दूर है। और मैं बैठ गया, उस मिट्टी से आत्मसात होने। लगा यहीं बैठा रहूँ।

आज सोचता हूँ उस मिट्टी में माँ का स्नेह है, उसकी माटी में मिलती काया हमने यहीं देखी थी। पिता जी को भी हम इसी नदी वाले श्मशान पर ले आये थे, इसी पगडण्डी से। इस "खुरपेड़िया" में उनका स्नेह है, उनकी फटकार है, उनका अनवरत आशीष है। कहाँ यह ममतामय-स्नेहिल पगडण्डी और कहाँ ये पथरीले फुटपाथ। पगडण्डी को हवा दुलराती है, मसूर की डालियाँ उससे बतियाती हैं, गन्ने के तनों पर फैली कोमल लम्बे लम्बे हरे पत्तों की छतरी उसे छाया देती है, और नदी के किनारे किनारे चल कर, दो तीन जगहों पर नदी का पानी पीकर-छूकर, देवल के पहले वाली बरगद की जड़ जाकर, पगडण्डी ख़तम हो जाती है। वही बरगद की जड़ जहाँ मधुमालती गाँव की किशोरियाँ माघ-फागुन में साग खोंटने या घास काटने के बाद आकर सुस्ताती थीं।

मुझे याद आ रहा है - प्रकाश से बतियाते-बतियाते, मेड़ पर बैठे बैठे, सूरज़ भगवान् ऊपर चढ़ आये थे। सिकरहना का पानी अब पूरी तरह चमकने लगा था, बाँस का पुल पार कर उस पार से आती हुई एक स्त्री पर मेरी नज़र पड़ी. उसकी चमकीली साड़ी पूरब के नवोदित सूर्य की पीली लालिमा में खूब चमक रही थी। दिनकर जी की "रश्मिरथी" के सातवें सर्ग की आरंभिक पंक्तियाँ अचानक कौंध गयी थी मानस-पटल पर - "निशा बीती गगन का रूप दमका, किनारे पर किसी का चीर चमका।

क्षितिज के पास लाली छा रही है, अतल से कौन ऊपर आ रही है ?"

और कई चित्र इसी तरह मानस में कौंधते रहे। वाल्मीकि का रावण-वध के पश्चात, अग्नि में तपी सीता का सौंदर्य-वर्णन - "तरुणादित्य संकाशा तप्त कांचन भूषणाम्,

रक्ताम्बर-धराम वालाम, नील कुंचित मूर्धजाम् ।"

या फिर उर्दू का वह प्रसिद्द शेर, जिसके शायर का नाम भी मुझे याद नहीं -

"उफक के दरीचों से किरणों ने झाँका, फजा तन गयी, रास्ते मुस्कराये
समटने लगी नर्म कुहरे की चादर, जवाँ साखसारों ने घूँघट उठाये,
वो दूर एक टीले पे आँचल सा लहरा, तसव्वुर में लाखों दिए झिलमिलाये!"

मैं सोचता रहा सब कितनी सुन्दर कल्पनाएँ हैं। वह स्त्री नज़दीक आ गयी, वह नदी से सटी पगडण्डी पर अपनी छोटी बेटी की ऊँगली पकडे चली आ रही थी। जैसे जैसे नज़दीक आती गयी, उसके गहने दिखने लगे। चमकीली साड़ी, बड़ा सा गोल मंगटीका, पाँव में पायल, हाथ में भारी पहुंची, शायद महादेव शिव के देवल में आज सोमारी की पूजा है....."कर्पूर गौरम करुणावतारम्" शिव की....करुणा के अवतार.... देवों के देव.... महादेव, शिव की। .....उसे शायद हम दोनों का बतियाना सुनायी देता है। वह नदी के किनारे किनारे वाली पगडण्डी से, आँचल से अपना मुँह ढाँके आगे निकल जाती है। बच्ची हमें देखती है फिर चुपचाप माँ की ऊँगली पकड़े चलती जाती है। उनके थोड़ी दूर जाने के बाद प्रकाश कहता है "ओह पार का धरम महतो के बेटी हई. पाँच बारिस हो गईल बियाह भइला, हर महिना में सोमारी के पूजा करे आवेली, बाढ़ रहेला तबहिनो, खूब पैसा कमालन इनकर मरद, फ़ौज़ में हवलदार हवन।" मैं उसकी बातें सुनता हूँ। गाँवों में हर आदमी हर आदमी के बारे में बतियाता है। इस दस साल के छोरे को भी सारी बातें मालूम हैं। मुझे अपने ज़माने के धरम महतो याद आते हैं। मज़बूत गभरू ज़वान...धरम महतो से सम्बंधित कई कहानियाँ मन में गूँज़ती हैं। अकेले बड़ी निर्भयता से भरी हुई नदी तैर जाते थे आदि आदि। मैं चुपचाप प्रकाश की बातें सुनता हूँ।

सोचता हूँ इन पगडंडियों में आँचल है, साड़ी है, सिन्दूर है, मंगटीका है, पायल है, पहुंची है, पंडित जी हैं, उनकी पाणिनि की ऋचाएँ हैं, उनकी धौत-शिखा है, उनका भारतीयता पर गर्व है, धरम महतो हैं। यह पगडण्डी कभी नदी से, तो कभी गन्नों से बतियाती है। रात के अँधेरे में सितारे नदी में डोल डोल कर इससे लोरियाँ सुनते हैं, पूर्णिमा की एकांत रात्रि में यह कभी आकाश के चाँद को तो कभी नदी के चाँद को निहारती चुपचाप सो जाती है।

और बेचारा फुटपाथ। उससे कोई नहीं बतियाता। बेचारा पत्थर की छाती लिए सारी दुनिया के जूते सहता है। कोई स्नेहिल हवा उसे नहीं दुलराती बल्कि हजारों कारें अपना काला दूषित धुआँ उस पर उगलती दिन-रात भागती रहतीं हैं। उसे कभी एकांत मिलता ही नहीं। किसी को उससे बतियाने की फुर्सत ही कहाँ है? कंक्रीट की अनवरत ऊँची उठती अट्टालिकाओं की छाया में बेचारा यह फुटपाथ और भी बौना होता चला जाता है।

एक बात बार बार मन में गूँजती है, मैं जब यहाँ अमेरिका आया था तो सोचा था मैं इस पगडंडी और फुटपाथ के बीच पुल बनूँगा विकासशील भारत और विकसित अमेरिका के बीच। अपने परिवार के बच्चों को अमेरिकनों जैसा पढ़ा-बढ़ा कर पुनः भारत लौट जाऊँगा। जब हिंदी के प्रचार-प्रसार में लगा था तो अपने वक्तव्यों में यह मेरा तकिया-कलाम हो गया था "हमारी पीढी चक्रवर्ती पीढ़ी है, हम बेटों को भारत और बाप को अमेरिका दिखाएँगें" लोगों को मेरी यह बात बहुत अच्छी लगती थी।

हाँ...वह पुल करीब करीब अपने प्रसृत परिवार के लिए तो बन ही गया पर मैं यह भूल गया था कि इस पार रह कर वह पुल बनाते बनाते मैं शायद इस पार को ज़्यादा जानने लगा हूँ, और शायद इतने गहरे स्नेह के बावजूद भी "उस पार" अनजाना सा लगने लगा है। पुल पर कोई रहता तो नहीं है, रहना या तो उस पार है या इस पार। शरीर, शायद मध्य-वर्गीय सुविधाओं के कारण, यहाँ का होना चाहता है, पर दिल और दिमाग अभी भी 'उस पार' में अटके हुए हैं, वह 'उस पार' कभी नहीं भूलता.... कम से कम पगडण्डी तो नहीं ही भूलती।

फूल नहीं, चिंगारी थीं

साधना उपाध्याय

आओ आओ सुनो गुनो सब
अपने देश की गाथा को
नहीं कल्पना, नहीं गप्प है
कान न दो अफ़वाहों को.

खुली हवा में साँस ले रहे
हम सब जो आज़ादी की
बड़ी लड़ाई कठिन लड़ी थी
देश भक्तों ने प्राणों की.

स्वतंत्रता की अलख जगाने
नवाब औ' राजे ही न थे
जन साधारण भी विचलित हो
लिये मशालें चलते थे.

खनक बेड़ियाँ, भारत माँ की
सुन व्याकुल कुछ सुकुमारी
कंगन, पायल छोड़ के दौड़ीं
आग लगाने चिंगारी.

वो फूल बनी थीं चिंगारी, वो फूल नहीं थीं, चिंगारी.

भूख हड़ताल करे ननी बाला
ज़ोर जबरदस्ती सब कर डाला
इक्कीस दिन तक डटी रही वो
बात मनी तब छुआ निवाला.

तन-मन-धन न्योछावर करतीं
भारत की सन्नारी थीं
ब्रिटिश राज्य झुलसाने वाली
फूल नहीं चिंगारी थीं.

स्वतंत्रता की ज्योति प्रकाशित
जिनने की निज जीवन से
कृतज्ञ हैं हम जनम-जनम भर
उऋण न होंगे हम उनसे
प्रण लेते हैं व्यर्थ न होगी
तब कुर्बानी भारत से.

नमन तुम्हें शत्-शत् हे नारी, तुम फूल नहीं थीं चिंगारी.

स्नेह ठाकुर की प्रकाशित पुस्तकें

अनमोल हास्य क्षण	(नाटक-संग्रह)
जीवन के रंग	(काव्य-संग्रह)
दर्दे-ज़ुबाँ	(नज़्म व ग़ज़ल संग्रह)
आज का पुरुष	(कहानी-संग्रह)
जीवन-निधि	(काव्य-संग्रह)
आत्म-गुंजन	(आध्यात्मिक-दार्शनिक गीत)
हास-परिहास	(हास्य कविताएँ)
ज़ज़्बातों का सिलसिला	(काव्य-संग्रह)
The Galaxy Within	(A collection of English poems)
अनुभूतियाँ	(काव्य-संग्रह)
काव्य-वृष्टि	(संकलन एवं संपादन)
पूरब-पश्चिम	(आप्रवासी सम्बन्धित आलेख संग्रह)
बौछार	(संकलन एवं संपादन)
काव्य हीरक	(संकलन एवं संपादन)
संजीवनी	(स्वास्थ्य सम्बन्धी लेख)
उपनिषद् दर्शन	(अध्यात्मिक)
काव्य-धारा	(संकलन एवं संपादन)
काव्यांजलि	(काव्य-संग्रह)
अनोखा साथी	(कहानी-संग्रह)
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास)
आज का समाज	(लेख-संग्रह)
चिन्तन के धागों में कैकेयी	
संदर्भ : श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण	(शोध-ग्रन्थ)
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास, द्वितीय संस्करण)
कैकेयी : चिन्तन के नव आयाम	
संदर्भ : तुलसीकृत श्रीरामचरितमानस	(शोध-ग्रन्थ)

प्रकाशक व वितरक

स्टार पब्लिकेशंज़ (प्रा.) लि.
४/५ बी., आसफ अली रोड
नई दिल्ली - ११०००२
भारत

Star Publishers' Distributors
55, Warren Street
LONDON – W1T 5NW
England

दिल्ली प्रेस की सरिता व अन्य राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय
पत्रिकाओं में भी रचनाएँ प्रकाशित